ISSN - 2229-6336

SUMANGALI

A Journal of Gender and heritage

Vol. VIII, No. 1 March 2022



Research & Publication Department
Shri Lal Bahadur Shastri National Sanskrit University
(Central University)
New Delhi - 110016

ISSN - 2229-6336

SUMANGALI

A Journal of Gender and heritage

Vol. VIII, No. 1 March 2022

Research & Publication Department
Shri Lal Bahadur Shastri National Sanskrit University
(Central University)
New Delhi - 110016

Publisher :
Research & Publication Department
Shri Lal Bahadur Shastri National Sanskrit University
(Central University)
Katwaria Sarai, New Delhi- 110016
www.slbsrsv.ac.in

Year 2022

ISSN - 2229-6336

Printed at :
Ganesh Printing Press, New Delhi - 16
E-mail :- ganeshpringtingpress0001@gmail.com
Ph. 09811663391

Sumangali

A Journal of Gender and Heritage



Sumangali

A Journal of Gender and Indian heritage

Sumangali is a Journal of Gender and Indian Heritage, published annually. It will focus on this image of woman in Indian tradition, her achievements and struggles. The Journal will carry studies of theoretical, analytical character. priority will be given to articles based on Sanskrit texts and culture and heritage. ir is an Interdisciplinary, multilingual (Hindi, English * Sanskrit) journal focusing on broad themes like Woman Culture, Woman and Education, Women's History and Women on Sanskrit texts. Besides original articles, the Journal also Includes book reviews on texts on woman and woman's issues.

Sumangali is brought out in March every year. Manuscripts are selected for publication after peer review.

Manuscripts not exceeding 6000 words, may be submitted in Ms word Format. The article should be typed in double space following the sixth edition of MLA Handbook with parenthetical documentation for references and foot note for explanatory note.

Email Id : sumangalilbs@gmail.com

Annual Subscription Rated : Individuals - Rs. 150/-

Institution - Rs. 300/-

नैवेद्य

'सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति' इस वचन द्वारा सम्प्राप्त समस्त विद्याओं के उद्‌गम वेद ही हैं। वेद से ही समस्त प्रवृत्तियाँ प्रकट हुई हैं। वेदों के आलोक में हमारा जीवन, हमारा आचरण ही वस्तुतः हमारी भारतीयता का विद्योतक है। वैदिक वांग्मय में अनेक प्रसंग स्त्रियों के महत्त्व को अभिलक्षित करते हैं–

जायेदस्तम्। (ऋग्वेद–३/५३/४१)
स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ। (ऋग्वेद–८/३३/१९)
वर्धस्व पत्नीरभिजीवो अध्वरे। (ऋग्वेद–५/४४/५)
त्वं साम्राज्ञी एधि पत्युरातं परेत्य। (अथर्ववेद–१४/१/४३)

इत्यादि वैदिकवचन पुंज मातृशक्ति को प्रतिपद महिमामण्डित करते हैं।

आज की नारी राष्ट्र का गौरव है, सभी क्षेत्रों में इसका निखरता स्वरूप सम्पूर्ण जनमानस को अचम्भित कर रहा है। इस भारत की पावन धरा में जहाँ गार्गी, मैत्रेयी, घोषा तथा अपाला जैसी विदुषियाँ रही हैं, वहीं रानी लक्ष्मीबाई तथा चाँदबीबी जैसी वीरांगनाएँ भी रही हैं। मीरा जैसी भक्ति और दुर्गा जैसी शक्ति का यह देश है। पार्वती जैसा तप एवं सावित्री जैसे संकल्प की यह भूमि है। वर्तमान में भी भारत की नारी शिक्षा, चिकित्सा, राजनीति, अर्थनीति, प्रशासन, खेलकूद तथा यहाँ तक की सेना में भी अपना अपूर्व कौशल दिखा रही है।

मैं विश्व की समस्त संस्कृतियों को यह सन्देश देना चाहता हूँ कि कन्यारत्न की रक्षा करें। पुत्र के कन्धों पर केवल पितृकुल का भार है, जबकि कन्यायें पितृकुल एवं पतिकुल दोनों के दायित्व का निर्वाह करती हैं।

कन्या संस्कृति है, इसे मारोगे तो भारत की संस्कृति मर जायेगी और संस्कृति के अभाव में देश दिशाहीन हो जायेगा। देश की दशा एवं दिशा व्यवस्थित हो, इसके लिए हमें यह संकल्प लेना ही होगा–बेटी बचाओ, बेटी बढ़ाओ! बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ !!

प्रो. मुरली मनोहर पाठक
कुलपति

सम्पादकीय

कन्या सृष्टि का आधार है, यह जननी है जगत् की, आश्रय है उत्तम गुणों की, संवाहक है संस्कारों की, मूर्ति है करुणा एवं ममता की, अधिष्ठान है प्रेम एवं समर्पण की। कन्या से नारी तक की यात्रा अनन्त संवेदनाओं की सुन्दर श्रृंखला है।

भारत के प्राचीन ऋषियों-महर्षियों-आचार्यों एवं चिन्तकों ने भारत की नारी में जिन गुणों के निरन्तर दर्शन किये, जिन गुणों एवं संस्कारों के प्रभाव से भारत की नारी दिव्यता एवं महनीयता को प्राप्त हुयी, उनमें लज्जा, विनय, संयम, तप, सन्तोष, क्षमा, धीरता, गम्भीरता, समता, सहिष्णुता, श्रमशीलता, निरभिमानता, मितव्ययिता, उदारता, भक्ति, सादगी, सतीत्व एवं ममत्व आदि गुणों की विशिष्ट महिमा है। नारी अपने गुणों से असम्भव को सम्भव कर सकती है, इसके विविध रूप हैं, जब यह सम्पत्ति देती है तो लक्ष्मी कहलाती है, विद्या देती है तो सरस्वती, अभय देती है तो दुर्गा और जब दुष्टों का दमन करती है तो यह महाकाली बन जाती है।

आज कन्या बुद्धिवैभव में पुरुषों को परास्त कर रही है, शिक्षा के क्षेत्र में परचम लहरा रही है। सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में कन्याओं की सफलता का प्रतिशत उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। आज की कन्या में पुरुषों के सापेक्ष डाक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, वैज्ञानिक तथा सामाजिक बनने की सम्भावना अधिक है। सेवा के सभी क्षेत्रों में चाहे वह जनसेवा हो, समाजसेवा हो, राष्ट्र सेवा हो, राजनीति हो, अर्थनीति हो, विदेशनीति हो, युद्धनीति हो या फिर प्रशासनिक सेवा हो सर्वत्र नारी शक्ति का अद्‌भुत प्रभाव एवं वर्चस्व परिलक्षित हो रहा है। समाज में जहाँ नारी सफलता के शिखर चूम रही है, वहीं कुछ अनपढ़ अज्ञानी लोग पुत्रमोह में भटककर कन्या को बोझ मानते हुए जन्म से पूर्व ही उसकी हत्या कर रहे हैं, ऐसा महापाप करने वाले मनुष्यों के पापप्रच्छालन हेतु कोई शास्त्रीय प्रायश्चित्त नहीं है।

मित्रों! कन्या, पिता का स्वाभिमान एवं माता की संस्कृति है। ममता की मञ्जूषा, स्नेह का सदन, वात्सल्य की अनुभूति, दया का उद्‌गम और समर्पण का संगम देखना है तो कन्या की रक्षा, शिक्षा, सुरक्षा हमारी सबसे कठिन परीक्षा है।

(प्रो. शिवशंकर मिश्र)

CONTENTS (अनुक्रम)

श्रीसम्प्रदायकुलनन्दिनी श्रीगोदा

डॉ.सुदर्शनन् एस्.
सहाचार्यः,
विभागाध्यक्षः, विशिष्टाद्वैतवेदान्तविभागः,
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः,
नवदेहली।

भारतीयज्ञानपरम्परायां विभिन्नाः सम्प्रदायाः उपलभ्यन्ते। यथा वैष्णव-शैवादयः। यद्यपीदानीन्तने काले हिन्दूसम्प्रदायाः अथवा हिन्दूइसम् इति एकरूपेण व्यवहारः तत्तु राजनीत्यां क्रियते। तत्र तत्र एकधा रीत्यापि क्रियते, कथञ्चित् क्रियते वा वास्तविकतया तत्तत्सम्प्रादयानुसारिणां दैनिकव्यवहारे साम्प्रदायिकव्यवहारे वा भिन्नभिन्नानि अनुष्ठानानि भिन्नभिन्नतया तत्तज्ज्ञानप्रदर्शनं विभिन्नाः उपदेशपरम्पराश्च पुरस्क्रियन्ते, तैस्तैः सम्प्रदायस्तैः। तादृशेषु बहुषु सम्प्रदायेषु कथं सम्पूर्णतया तेषां ज्ञानं लब्धुं शक्यते चेत् सर्वैः सर्वसम्प्रदायज्ञानविषयं प्रायशो दुश्शकम्। तत्तत्सम्प्रदायस्तैः तत्तत्सम्प्रदायविषयज्ञानं सुतरां लभ्यते। तत्रापि परिश्रमेण सत्सम्प्रदायज्ञानाय, तस्य विस्तरेण ज्ञानाय इतरसम्प्रदायाणां तत्त्वप्रदर्शनम् अनुष्ठानप्रकाराश्च केचन अधीयन्ते एव। अत एव दर्शनमित्येको विभागः प्रायशः बह्वीषु सर्वकलाशालासु दृश्यते प्रचाल्यते वा। तत्र विमर्शकैः विभिन्नज्ञानविषयकपरम्पराः अथवा सम्प्रदायाः ज्ञानमार्गरीत्या पृथक्-पृथक्-रीत्या व्यवह्रियन्ते अथवा पूजनप्रकारक्रमेण उपासनक्रमे वा तत्र तत्र पृथक्-पृथक्तया व्यवह्रियन्ते। प्रसिद्धाः अद्वैत-विशिष्टाद्वैत- द्वैतसम्प्रदायाः ज्ञानमार्गाः। एतेषां त्रयाणां यद्यपि वेदाः उपनिषदः इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्रादिकं सर्वं प्रमाणतया पुरस्क्रियते उदाह्रियते उद्ध्रियते निरूप्यते च। तथापि मूलभूतस्य ब्रह्मसूत्रात्मकग्रन्थस्य कृष्णद्वैपायनस्य व्यासरचितस्य अङ्गभूतानां सूत्राणां यानि तत्तत्सम्प्रादायाचार्यैः व्याख्यानानि कृतानि तद्व्याख्यानमूलभूतग्रन्थप्रदर्शनभूताः तत्सम्प्रदायस्तानां भवन्ति। तस्मिन् ज्ञानमार्गे ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या ब्रह्मण एव एवं जगदात्मना परिणामः अविद्यया लब्धः। यः कोऽपि उपासकः वाक्यार्थज्ञानेन बहूनि वाक्यानि निर्दिशति, तथापि अहं ब्रह्मास्मीति उपास्यं अद्वितीयं ब्रह्म प्राप्नोति। अर्थात् अद्वैतं ब्रह्म प्राप्नोति। अयं तु सामान्यतया उच्यन्ते तत्तत्सम्प्रदायेषु विशेषाः अर्थाः उपस्थाप्यन्ते। ज्ञानमार्गः कश्चिद् अद्वैतमार्गः, विशिष्टाद्वैतिभिः एकमेव ब्रह्मतत्त्वं तदाश्रयणमेव हि तं तस्य वैकुण्ठाख्ये लोके तदनुभवः पुरुषार्थः तस्य शरीरभूताः चेतनाः तादृशपुरुषार्थलाभाय तच्चरणं नामाश्रयणं तद्धितम् आचरेयुः इत्यादिकं उपदिश्यते। स च विशिष्टाद्वैतमार्गो भवति। विशिष्टस्य ब्रह्मणः अद्वितीयता अद्वैतं विशिष्टाद्वैतमिति तत्र प्रदर्शनं भवति।

द्वैतमार्गे जीवब्रह्मणो: भेदवाद: द्विधा तत्त्वप्रतीतिश्च प्रदर्श्यते इति तत्र सामान्या: विषया: येषु प्रसिद्धेषु त्रिषु सम्प्रदायेषु प्रमुखा:। तत्र किमुच्यते एतत् अतिरिक्ततया उपासनप्रकारेण मूर्तिपूजाद्वारेण प्रवृत्ता: सम्प्रदाया:, कैश्चित् षन्मतानि इति प्रदर्श्यन्ते। कैश्चित् तत्र प्रधानतया शैववैष्णवपरम्परे द्वे प्रसिद्धी क्रियेते। तत्र वैष्णवसम्प्रदायेषु अपि अवान्तरविभागा: सन्ति। अथवा भगवत: प्रथमाचार्यत्वं तदनन्तरं तदनुसारेण श्रिय: विश्वक्सेनस्य अनन्तरं शठारे: इति अवरोहणक्रमेण गुरुपरम्परा अनुसन्धानपूर्वकम् अर्थशिक्षणम् अर्थलाभ: तत्त्वज्ञानोपदेश: अनुष्ठानादिकं च प्रवर्त्यते श्रीवैष्णवसम्प्रदाये। श्रिय: लक्ष्म्या: प्रामुख्यप्रदर्शक: अथवा अङ्गीकारी अथवा प्रामुख्यावह: वा अयं सम्प्रदाय: श्रीवैष्णवसम्प्रादय: इत्युच्यते। श्रीवैष्णवसम्प्रदायस्य बहुधा प्रचार: द्राविडदेशे बहुतरां सुतरां च लभ्यते। तत्र प्रधानं कारणं भवति वेदं तमिऴ् चेद्द मरन्, मयरवर् अरुपेट्र आळवार इति शठकोपस्य शठारे: नम्माल्वा इत्याख्यस्य आचार्यश्रेष्ठस्य श्रीवैष्णवगुरुपङ्क्तिषु प्रधानस्य प्रमुखस्य भक्तजनसन्तानकूटस्य तादृशै: विष्णूपासकै: भगवद्विषये बहुगाथा: गायकै: उपासनकर्तृभि: 'आळवार' इति अपरनामधेयै: प्रसिद्धनामधेयै: प्रकाशित: प्रसृत: उद्धृतश्च। अयं सम्प्रादय इति सूक्तिकञ्च एतै: इति तत्र प्रमुखं कारणं भवति। तथा च क: सार? इति चेत् विभिन्नेषु सम्प्रदायेषु प्रसिद्ध: श्रीवैष्णवसम्प्रदाय:। अयं च द्राविडप्रान्तेषु अधिकम् उपलभ्यते तत्र निदानम् आळलारनामधेयशिखामणीनाम् अवतारदेश: स: इत्येष:। तत्र प्रमाणं पुराणेषु उद्धृतम्–

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः
क्वचित् क्वचित् महाभागाः द्रविडेषु च भूरिशः ॥
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी
कावेरी च महाभागाः प्रतीची च महानदी ॥

इति पुराणश्लोक: उदाह्रियते पूर्वाचार्यै: श्रीवैष्णवसम्प्रदायस्थै: अङ्गीक्रियते च अन्यै: सम्प्रदायस्थै:। श्रीवैष्णवसम्प्रदायस्य एवं प्रकाश: 'आळवार' इति भगवद्भक्तशिरोमणिभि: सुतरां विस्तरं कृत:। बहुप्रकाशितश्च आदरणीयश्च पन्था: इति। तेषु द्वादशु आळलारमहाभक्तेषु आण्डाल् गोदादेवी इत्याख्याया: प्रमुखं स्थानं वर्तते। सा एकैव द्वादशसूरिषु नारीमणि:। तस्या: अपरं प्रसिद्धं नाम द्राविडभाषायां चूडिकोडुत्तनाच्चियार् इति। आमुख्यमाल्दा नाम धृत्वा अनन्तरं प्रक्षिप्तं निक्षिप्तं धृतं च आमुक्तमिति। धृत्वा मुक्तं भवति आमुक्तमिति। सूडि कलैन्द तस्य भगवति समर्पयति सा। अयं वृत्तान्त: निगमान्तमहादेशिकै: आचार्यश्रेष्ठै: श्लोकतया प्रदर्शित: गोदास्तुति: इति स्तोत्रग्रन्थे–

चूडापदेन परिगृह्य तवोत्तरीयं
मालामपि त्वदलकैरधिवास्य दत्ताम् ।
प्रायेण रङ्गपतिरेव बिभर्ति गोदे
सौभाग्यसम्पदभिषेकमहाधिकाराम् ॥

(श्रीनिगमान्तमहादेशिकविरचितगोदास्तुतौ अष्टादशतमश्लोक:)

भगवतोऽपि सौभाग्यं गोदया भुक्तमाल्यस्वीकरणेन रङ्गनाथस्य भवतीति तत्र स्वामिभिः उक्तम्। मालामप्यधिवास्य दत्तां..... तत्र पट्टाभिषेकः क्रियते चेत् महद्भिः राज्ञैः शिरसि किरीटं युज्यते पश्चात् वशिष्टेन महात्मना, अयं च रामपट्टाभिषेके उपलभ्यते। किरीटीने युज्यते राघवः इति।

तथा च गोदया किमुच्यते सौभाग्यसम्पदधिकमहाधिकारं बिभर्ति इति तत् त्वया आभुक्तमालाधारणं करोति रङ्गनाथः। एवञ्च चूडापदेन तस्य उत्तरीयं स्वीकृतवानिति प्रदर्शयति। भक्ताग्रा गोदादेवी आळवार इति प्रसिद्धेषु विष्णुभक्तेषु अपि प्रमुखस्थानवहा सा। कुत इति चेत्, साम्प्रदायिकैः एवम् उच्यते श्री-भू-नीलादिमहिषीणां सर्वासाम् अंशेन आविर्भूता सा इति।

श्रीविष्णुचित्तकुलनन्दनकल्पवल्ली
श्रीरङ्गराजहरिचन्दनयोगदृश्यां
साक्षात् क्षमां करुणया कमलामिवान्यां
गोदामनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ॥

तत्र तया गोदादेव्या भगवद्विषये सुनितरां मग्नं गाढतया तस्याः वर्तीश्च तत्तातपादैः अन्यैः आळलारश्रेष्ठैः पेरियाल्वार इति नामधेयैः श्रीविष्णुचित्ताद्यैः-

गुरुमुखमनधीत्य प्राह वेदान्नशेषान्
नरपतिपरिक्लृप्तं शुल्कमादातुकामः।
श्वसुरममरवन्द्यं रङ्गनाथस्य साक्षात्
द्विजकुलतिळकं तं विष्णुचित्तं नमामि ॥

इति ध्यानश्लोकविषयीभूतैः एतस्याः सम्वर्धनसमये प्रत्यहं प्रत्यवकाशं वा कृष्णकथाश्रावणमेवावकरोत् सा स्वदुहित्रे गोदायै। तथा करणात् तस्याः मनसि आदावारभ्य बाल्यादारभ्य कृष्णविषयिकी भक्तिः महनीयविषयप्रीतिरूपा भक्तिः समजायत। गोदायाः भक्तिस्तु न सामान्या अपि तु परमभक्तिरूपा भवति। गोदा कृष्णविषयककथाश्रवणेन भक्तिरेव रत्यात्मना परिणता कृष्णभक्तिरूपा रतिस्वरूपताम् आपन्ना तमेव पतित्वेन प्राप्तये सञ्जाता। इति तस्याः वैशिष्ट्यं भवति। फलस्वरूपेण रङ्गनाथमेव भर्तात्वेन प्राप्ता। कृष्णस्तु विभवे नास्ति कथं शक्येत परिणेतुं स्वपित्रे च इमाम् आशां प्रकटितवती। बहुवारं काठिन्यं प्रतिपादिते पित्रे पौनः पुन्येन तमेव कृष्णं भर्तात्वेन वृणे वृणे इति स्वात्मानं निश्चीचकार। तत्र च प्रयत्नं च विहितवती। कथं कृष्णं भर्तात्वेन वृणे इति मार्गम् अन्विषति। तथा श्रुतकथाभिः ज्ञाता कात्यायणीव्रतं गोपीभिः अनुष्ठितं सा अनुष्ठितवती। गोपीभिः येन प्रकारेण कात्यायनीव्रतम् अनुतिष्ठितं तथैव इयमपि अनुष्ठितवतीति विशेषः। कात्यायनीव्रते इन्द्राणी पार्वात्यादयः उद्दिष्टाः देवताः भवन्ति। गोदादेव्या अनुष्ठितव्रते तु कश्चन विशेषः वर्तते तत्तु कृष्णमेव आराध्यत्वेन

भावनम्। एवं प्रकारेण व्रतानुष्ठानं द्राविडप्रदेशेषु अद्यापि प्रसिद्धम्। तिरुप्पावै इत्यत्र पावै इत्यस्य नार्यः इत्यादयः अर्थाः सन्ति। व्रतस्य स्त्री उद्दिष्टम् इति कश्चन व्रतः, कन्यकाभिः अनुष्ठेयमित्यपि अर्थो लभ्यते। नोम्बु इत्यत्र ते एव अधिकारिणः। व्रतानुष्ठाने अधिकारिणः ज्ञानं परमावश्यकम्। कत्यायनीव्रतन्तु हेमन्तऋतौ मार्गशीर्षमासे कन्यकाः सर्वाः अपि मिलित्वा व्रतमनुतिष्ठन्ति। व्रतकाले च स्नात्वा आराध्यसम्पदश्च गृहीत्वा समीपपरवर्तिहरिम् उद्दिश्य आराधयन्ति। भावनया स्वक्षेत्रं श्रीविल्लिपुत्तूर् एव नन्दगोकुलं मन्वती गोदा अस्ति। कुत्रापि गाथासु श्रीविल्लिपुत्तूर इति नोदिशति अपि तु तिरुवायरपाडी इत्यादिकमेव प्रकाशयति। गोदया तत्र विद्यमानाः योग्याः गोपीत्वेन एव भाव्यते। स्वयमपि स्वं गोपीमित्येव अनुसन्धत्ते स्वगाथासु। श्रीविल्लिपुत्तूर्क्षेत्रे वटपत्रशायी कृष्णः वसति। अस्याः गोदायाः व्रतानुष्ठानमेव गाथाप्रबन्धेन रचितं वर्तते। तदेव तिरुप्पावै इति कथ्यते। तत्र त्रिंशत् गाथाः सन्ति। अन्तिमपावै तु वङ्गकटल्लैन्द... इत्यत्र प्रेक्षावदुपादेयताप्रयोजकं वक्तृवैलक्षण्यं फलवैलक्षण्यं च प्रकटयति। कथानिबन्धनरूपञ्च गोपिकाः कृष्णं प्राप्तवत्यः इति। सर्वाः अपि गाथाः द्रविडभाषायामेव सन्ति। व्रतानुष्ठानफलञ्च विशिष्य उक्तं वर्तते। न हि मात्रम् आमुष्मिकम् अपि तु ऐहिकमपि आयुरोग्यादिकमपि सुस्थं भवतीति ज्ञायते। श्रीतिरुप्पावै इत्यस्य सङ्गतलिल्मालै इत्यर्थो भवति। इयमेव तिरुप्पावै इत्यस्य गोदया कृत नामधेयम्। एवं प्रकारेण त्रिंशत्गाथा अपि ये अधीयन्ते ते नूनं सौख्यं भजन्ते। एवं प्रकारेण गोदया नाच्चियार् तिरुलोळि अपि विरचिता वर्तते। अन्ते च श्रीगोदादेवी श्रीरङ्गक्षेत्रिणं श्रीरङ्गनाथं परिणीय तस्य सायुज्यं प्राप्तवती। श्रीगोदायाः इयं पुस्तिका सम्पूर्णा स्त्रीसमाजं नूनमुद्धारयति।

* * *

नारीणां नभः ह्यः, साम्प्रतं श्वश्च

डॉ. आभा झा

प्रवक्त्री

गार्गीसर्वोदयकन्याविद्यालयः,

ग्रीनपार्क, नवदेहली।

मानवानाम् इतिहासे यदाप्रभृति मानवः स्त्रीपुरुषयोः रुपेण विभक्तः, उभयोः अधिकार-कर्तव्ययोः पृथक्-पृथक् प्रतिमानं निर्मितम्, ततः प्रभृति एव स्त्रीणां स्थित्युपरि पृथक्तया विवेचनायाः आवश्यकता अनुभूता। मानवादतिरिच्य अन्येषु जीव-जन्तुषु कर्तव्याकर्तव्यविषये लिङ्गाधारभूता विभिन्नता न दृश्यते। एतत् कथयितुं शक्यते यत् मानवः सर्वश्रेष्ठः अस्ति, विचारवान् अस्ति, विवेकवान् अस्ति बौद्धिकसम्पदासम्पन्नः अस्ति, अतएव सः कस्यापि विषयस्य सूक्ष्मविश्लेषणं कर्तुं शक्नोति, तं विषयम् औचित्यानौचित्यस्य निकषे मापयितुं शक्नोति।

सर्वप्रथमं नारीणां स्थितिं ज्ञातुं चलामः, विश्वस्य आद्यं ज्ञानकोषं ऋग्वेदं प्रति। यत्र स्त्री-पुरुषयोः सहयोगात्मकं रूपं दृश्यते, प्रतिस्पर्धात्मकं न। ज्ञानविज्ञानयोः अनन्ते आकाशे उड्डयितुम् उभौ समरूपेण स्वतन्त्रौ आस्ताम्, उभावपि साधनया ज्ञानस्य नूतनं वातायनं उद्घाटयितुं प्रयत्नशीलौ आस्ताम्, ज्ञानस्य भण्डारं पूरयितुं सक्रियां भूमिकां निभालयन्तौ आस्ताम्। तस्मिन् काले 'ऋषि-ऋषिका' उभायोः चर्चा मिलति। वैदिककाले स्त्रियः स्वतन्त्राः आसन्। तासां स्वतन्त्रता 'देह-आत्मा-बुद्धि' इति त्रिष्वपि स्तरेषु स्वीकृता आसीत्। वेदेषु स्त्रीणां शिक्षा-दीक्षा-शील-गुण-कर्तव्य-अधिकार इत्यादीनां सामाजिकभूमिकानां च सुन्दरं वर्णनं प्राप्यते। वेदे स्त्रियः गृहस्य, समाजस्य देशस्य च साम्राज्ञी इति रूपेण समादृताः आसन्। वेदे स्त्रियः यज्ञीयाः सन्ति। तत्र नारी विदुषी, देवी, सरस्वती, इन्द्राणी, उषा आदि नामभिः अभिहिता अस्ति। सूर्यस्य पर्यायः ऊषा सौन्दर्यस्य प्रतीकरूपेण दृश्यते स्मेति। स्त्रीणां श्रेष्ठतायाः एव घोषणा आसीत्-

"एषा दिवो दुहितो ज्योतिष्मती, बुद्धिमती, ज्योतिर्वसाना वीरणी"।

सम्पूर्णे वैदिके साहित्ये मूर्धा, मनस्विनी, उग्राविवाचिनी आदिभिः विशेषणैः विभूषिताः स्त्रियः शक्तिमत्यः अपि आसन्, स्वशक्तिविषये सचेतनाः अपि आसन्।

ऋग्वेदे पौलोमी शच्याः इयम् उक्तिः ध्यातव्या अस्ति-"अहम् केतुः मूर्धा, उग्रा, विवाचिनी"। अहं यं कमपि ब्रह्मां पुरोधां च कर्तुं सक्षमा-स्त्री हि ब्रह्मा बभूव ह अर्थात् स्त्रियः एव सृष्टि-निर्माणस्य

हेतुभूताः वर्तन्ते। स्त्रियाः आशास्यं मनः अर्थात् स्त्रीणां मनः शासनं कर्तुं योग्यं न भवति।

ऋग्वेदस्य दशमे मण्डले घोषा, रोमशा, विश्वावारा, इन्द्राणी, शची, अपाला आदि स्त्रीणां नाम मन्त्रद्रष्टारूपेण आदरपूर्वकं गृह्यते। अस्मिन् काले स्त्रियः शिक्षा-राजनीति-युद्धनीति इत्यादीनां ज्ञानं प्राप्नुवन्ति स्म। यजुर्वेदस्य दशमे सप्तदशे च सूक्तौ उल्लेखः प्राप्यते यत् ताः शासकचयनस्य अधिकारेणापि अन्विताः आसन्। अथर्ववेदस्य एकादशे ब्रम्हचर्यसूक्ते कन्यायाः कृते विद्याग्रहणपर्यन्तं ब्रह्मचर्यधारणस्य, तदुपरान्तं च विवाहस्य उल्लेखः प्राप्यते। चतुर्दशे सूक्ते माता-पितरौ निर्दिष्टौ स्तः यत् पतिगृहप्रेषणसमये कन्यायै बुद्धिमत्तायाः विद्याबलस्य च उपहारः दातव्यः। यदा कन्याः बाह्योपकरणान् त्यक्त्वा अन्तः स्थितेन विद्याबलेन चैतन्यप्रकृतयः भवन्ति, तदा तासां योग्यपत्या सह विवाहः करणीयः। तस्मिन् काले स्त्रियः पुरुषाणामिव अध्ययनम्-अध्यापनं च कुर्वन्ति स्म। महर्षिः पाणिनिः अष्टाध्यायी इति ग्रन्थे 'उपाध्याय' इति शब्दस्य द्वे स्त्रीलिङ्गरूपे उक्तवान् अस्ति-

उपाध्यायी-उपाध्यायस्य पत्नी,

उपाध्यायानी-या स्वयं वेदानां प्रवचनं करोति।

अग्रे चलामः उपनिषदां निधिं प्रतिस्वज्ञानस्य समृद्धया, नित्यं नूतनेन अनुसन्धानेन ब्रह्मविद्यायाः अजस्र स्रोतसा जगदिदम् आलोकयितुं महत्वपूर्णां भूमिकां निर्वहन्ती गार्गी। उपनिषद्-कालस्य द्युतिमती ऋषिका आसीत्। सा दर्शनशास्त्रस्य अप्रतिमा विदुषी आसीत्, ब्रह्मविद्यायाश्च उद्भट-ज्ञात्री आसीत्। बृहदारण्यके उपनिषदि गार्गी याज्ञवल्क्ययोः सम्वादे तस्याः ज्ञानस्य, वाकपटुतायाः तर्कशीलतायाः च अनुपमा प्रतिभा दृश्यते।

मित्रस्य कन्या याज्ञवल्क्यस्य च द्वितीया पत्नी मैत्रेयी स्त्रीणां स्वतन्त्र-अस्मितायाः, वैचारिक-समृद्धेः अनुपम-विद्वत्तायाः च त्रिवेणी आसीत्। बृहदारण्यके उपनिषदि याज्ञवल्क्येन सह तस्याः अपि सम्वादः प्राप्यते। यदा याज्ञवल्क्यः वानप्रस्थाश्रमं गन्तुं कामयते स्म, सा अपि सहधर्मिणीरूपेण सांसारिकानि वस्तूनि परिहाय तेन सह आश्रमं गच्छति। अनेन तस्याः निःस्पृहता, पतिं प्रति एकनिष्ठं प्रेमविद्यां प्रति च अनुरागः लक्ष्यी भवति। अस्मिन् क्रमे वशिष्ठस्य पत्नी अरुन्धती, अगस्त्यस्य पत्नी अपाला अपि उल्लेखनीये स्तः। ये पत्या सह मिलित्वा मन्त्राणां साक्षात्कारं कृतवत्यौ। ऋषिका-सूर्यायाः धर्मोपदेशिका-इलायाश्च उल्लेखं विना वैदिक कालस्य स्त्रीणां शक्तिः, समाजस्य निर्माणे च तासां भूमिका, तासाम् अवदानस्य कथा अपूर्णा एव स्थास्यति।

इतः परं यदि स्त्री-शक्तेः साक्षात्कारस्य प्रश्नः समुदेति चेत् पर्वतसुता उमायाः चरित्रोपरि संक्षिप्ता दृष्टिः दातव्या एव। यद्यपि पार्वत्याः व्यक्तित्वं साहित्यिकं पारलौकिकं च मन्यते, सा मानुषी न, अपितु देवी मन्यते, परं अहं मन्ये यत् यथार्थस्य आधारभूमौ एव साहित्यस्य अस्तित्वं भवति।

पार्वती दृढ़सङ्कल्पशक्तया दुष्प्राप्यं प्राप्तुं सर्वं सुख-साधनं परित्यज्य कठिनतपेन तपस्याबलेन अवृणोत् महेश्वरं, यः सृष्टेः बीज-स्थितिः संहार- त्रयाणामपि हेतुः मन्यते। महाकविः कालिदासः कीदृक् सुन्दरं वर्णनं कृतवानस्ति पार्वत्याः तपस्यायाः-

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेमपतिश्च तादृशः।

पार्वत्याः एकान्ततपस्यायाः एव परिणामः आसीत् यत् शिवः अर्धनारीश्वरः भूत्वा समस्तसृष्टेः सर्जकः पोषकश्च अभूत् ।

स्त्रीणां शक्तेः वर्णनक्रमे यदा रामायणस्य प्रसङ्गः आयाति तदा अहं कैकेय्याः असामान्यं व्यक्तित्वं सम्मुखीकरोमि, सा अप्रतिमा योद्धा, सहृदया, सेवापरायणा दूरदर्शी चासीत्। रामस्य चक्रवर्तितायाः द्वारम् उद्घाटयितुं सा समाजस्य अपयशं सोढ्वा अपि, पत्युः पुत्रस्य च निंदाभाजिनी भूत्वा अपि अन्ते च वैधव्यं प्राप्य अपि रामाय वनवासं याचितवती। संभवतः अनेनैव कारणेन रामः कदापि कैकेयीं प्रति श्रद्धां न तत्याज। अस्मिन्नेव प्रसङ्गे जनकनन्दिन्याः सीतायाः अपि चर्चा भवितव्या-राजपुत्री राजवधूः च भवन्ती अपि वनस्य कण्टकाकीर्णे पथि चलन्ती स्वसुख-दुःखात् उदासीना कर्तव्यपथे चलितुं दृढ़तया युक्तं सीतायाः चरित्रं अतीवसुदृढ़ं सबलं प्रणम्यं चास्ति। आत्मनः दुर्बलान् मन्यमानाः स्त्रियः अवश्यमेव तस्याः उदात्तचरित्रस्य व्यक्तित्वस्य च अध्ययनम् कुर्वन्तु। शिवस्य धनुः वामहस्तेन ग्रहणस्य क्षमतया युक्ता, पत्या सह वनगमनस्य स्वतन्त्रनिर्णयग्रहणक्षमता, लङ्कावासे अपि रावणेन समम् असुरस्य समक्षमपि निर्भीकरूपेण पतिव्रत्य-धर्मस्य पालनं, रामं च लोकापवादात् रक्षयितुं सहर्षं अग्निपरीक्षार्थं प्रस्तुता जनकनन्दिनी नमस्या अस्ति सर्वेषाम्।

सीता अवश्यं स्वकर्तव्यं पालितवती, राज्ञश्च कस्यापि कार्यस्य आलोचनां न कृतवती। परम् कवेः न्यायं (पोएटिक जस्टिस) पालयन् महाकविः कालिदासः सीतायारेव मुखात् बहिरानीतवान्-

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा
वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्
मां लोकवादश्रवणादहासीः
श्रुतस्य किं त्वत्सदृशं कुलस्य।

महाकविः भवभूतिस्तु इतौपि निर्ममः भूत्वा रामस्य मुखात् बहिरानीतवान्-

अयि कठोर यशः किल ते प्रियं,
किमयशो ननु घोरमतः परम्

किमभवत् विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ कथं बत मन्यसे।

अपि च

ये हस्तदक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्
रामस्य बाहुरसि दुर्भरगर्भखिन्न सीताविवासनपटो, करुणा कुतस्ते।

अधुना आगच्छामः महाभारतकालं प्रति यदा सामाजिकमान्यताः विशृङ्खलिताः, नियमाः शिथिलीभूताः, स्त्रीणां च स्थितिः दयनीयासीत् सञ्जाता। ऋषिगालवाय शतद्वयं श्यामकर्णं अश्वं दातुम् असमर्थः राजा स्वपुत्रीं ददाति, ऋषिश्चापि तद्दानं स्वेच्छया गृह्णाति। अन्यायस्य पराकाष्ठेयम्! सर्वत्र विरोधाभासिनः द्वंद्वस्यापि समये द्रौपद्याः चरित्रं स्त्री–शक्तेः घोषं करोति। द्रौपदी अन्यायस्य प्रतिरोधं करोति, सभामध्ये गुरुजनान् धर्मरक्षकान् च निर्भर्त्सयति, अन्यायिनं निर्मम दण्डं दापयितुं संकल्पयति च। सा स्वाम् इच्छां सर्वोपरिं मन्यते। पतिचयनस्य स्वतन्त्र अधिकारम् उपयुज्यमाना सा सूतपुत्रं वर्तुम् अस्वीकृतवती।

अधुना दृष्टिं क्षिपामः मध्यकाले, यः सभ्यता संस्कृतेश्च क्षरणस्य चरमपतनस्य च कालः आसीत्। राज्ञाम् अकर्मण्यता, विलासप्रियता कातरता कारणात् च विदेशी आक्रान्तृणां शासनं प्रारब्ध म्। अस्मिन् काले स्त्रीणां शोषणं चरमाम् अवस्थाम् आपन्नम्। इतः एव स्त्रियः भोगभूमयः जाताः, ताः केवलं पुरुषाणां वासनापूर्त्ये साधनरूपेण स्वीकृताः, सन्ततिजन्मनः उपादानभूताः सञ्जाताः। गोवत्सरूपेण तासां दानस्य विक्रयस्य च परम्परा प्रचलिता, ताः शिक्षायाः प्रकाशेण वञ्चिताः, ताः असूर्यम्पश्याः जाताः विदेशी आक्रान्तृभिः शीलरक्षायाः व्याजेन सतीप्रथा, जौहर, पर्दाप्रथा आदि कुरीतयः समाजे प्रविष्टाः– पराधीनतायाः अत्याचारस्य निदर्शनरूपेण श्लोकोऽयं द्रष्टव्यः –

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने
पुत्रः रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति।

अस्मिन् काले अपि राजनीतौ रजियासुल्तान, दुर्गावतीचांदबीबी, साहित्ये च संत कवयित्री मीराबाई आदयः कानिचन नामानि स्वशक्तिं दर्शयन्ति।

अग्रे राजा राममोहनरायः, ईश्वरचन्द्रविद्यासागरः, ज्योतिबाफुले, अम्बेडकरः, पेरियारः आदयः अनेकैः समाजसुधारकैः एतासां कुरीतीनां मूलम् अशिक्षां दूरीकर्तुं प्रयासः आरब्धः।

नार्यः अपि सामान्यमानववत् जीवनयापनस्य स्वप्नं द्रष्टुं आरब्धवत्यः। शिक्षायाः प्रकाशेण तासां जीवनं द्योतितं, पराधीनतायाः पाशः शिथिलीभूतः, संविधाने च समानतायाः अधिकारः अपि ताभिः प्राप्तः।

सामाजिकचेतनां सुपोषयति साहित्यम्। अत्र महादेवीवर्मा, सुभद्राकुमारीचौहानः, सरोजनीनायडूः, महाश्वेतादेवी, अमृताप्रीतमः, चित्रामुद्गलः, मन्नूभण्डारी, शोभाडे, ज्योतिर्मयी देवी शिवानी, मृणालपाण्डेय आदिभिः महत्त्वपूर्णा भूमिका निर्वोढा। विज्ञानक्षेत्रे सुनीताविलियम्सः, कल्पनाचावला, मीनलसम्पतः, इन्दिरा हिन्दुजा, अदितिपन्तः, प्रियम्वदा, नटराजनः, मिसाइलमहिला टेसीथॉमसः आदिभिः स्वचिन्तनेन अध्यवसायेन च समाजस्य गतिः विकसिता ।

अधुना वर्तमानकालमहिलानां स्थितिं पश्यामः। गम्भीरचिन्तने कृते सति कस्यापि विषयवस्तुनः स्वरूपद्वयं भवति– बाह्यं आन्तरिकं च। मम प्रयासः अस्ति उभावपि समक्षम् आगच्छेताम्। अधि सङ्ख्यकाः अद्यतनीयाः महिलाः असंशयं शिक्षिताः, आत्मनिर्भराः च सन्ति, विश्वस्य किमपि स्थानं तासां कृते अगम्यं नास्ति, जीवनस्य नास्ति किमपि क्षेत्रं यत्र ताः आत्मनः प्रतिभायाः प्रकाशं न दर्शितवत्यः, परं प्रश्नाः अद्यापि सन्ति, शृङ्खलाः अद्यापि विद्यन्ते–

विषयमिम् अहं चतुर्षु भागेषु प्रस्तौमि –

वैचारिकस्तरे, बौद्धिकस्तरे, आर्थिकस्तरे, राजनीतिकस्तरे च।

वैचारिकस्तरे–अस्मिन् स्तरे स्त्रियः निर्विवादरूपेण अग्रे वर्तन्ते। ताः जीवनमूल्यसंयुक्ताः, जन्मना एव संस्कारिताः त्यागभावनां मानवीयमूल्यं च सन्ततीनां मनसि कुशलतापूर्वकम् आधानस्य सामर्थ्यान्विताः विशिष्टां भूमिकां निर्वहन्ति।

अस्मिन् प्रसङ्गे अहं हिन्दीभाषायाः, महाकविजयशङ्करप्रसादस्य 'कामायनी' इति महाकाव्यस्य श्रद्धायाः मुखात् निर्गताम् इमाम् उक्तिं प्रस्तौमि–

इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग झलकता है।
मैं दे दूं और न फिर कुछ लूं इतना ही सरल झलकता है।।

बौद्धिकस्तरे–बौद्धिकस्तरे स्त्रीणाम् अग्रगामिता अस्मिन् स्तरे स्वीकर्तुं शक्यते यत् तासां सामान्यज्ञानं, प्रत्युत्पन्नमतित्वं, औपचारिकशिक्षायाः अभावे अपि परम्परया प्राप्तं ज्ञानं व्यावहारिकस्तरे रूपायणस्य सामर्थ्यं प्रश्नचिन्हात् वर्जितम्। अद्यतनयुगे औपचारिकशिक्षाग्रहणस्य स्वतन्त्रता अस्ति अपरमस्मिन् स्तरे एका विषमता अपि दृश्यते। बालिकाः स्वरुच्यनुसारं विषयचयनस्य स्वतन्त्रता–विरहिताः एव। सममेव कन्यां रक्ष, कन्यां पाठय इति निर्देशवाक्ये प्रचलिते सति अपि शिक्षितपरिवारस्य बालिकां विहाय स्थितिः दयनीया एव।

आर्थिकस्तरे-प्राचीनकालादपेक्षया महिलाः आर्थिकात्मनिर्भरतायाः महत्वं जानन्त्यः स्व सामर्थ्यानुसारं वृत्तिं, व्यवसायं, कुटीरोद्योम् आदि माध्यमेन परिवारस्य आर्थिकीं स्थितिं सुदृढ़ीकर्तुं प्रयत्नशीला सन्ति। ताः सिविलसर्विस, इंजीनियरिंग, मेडिकल, मैनेजमेंट, सेना आदि अनेकक्षेत्रेषु अलम्। एतदतिरिच्यापि दैनिकव्यवहारयोग्यवस्त्वादिमाध्यमेन औपचारिकशिक्षासंयुक्ताः अथवा वञ्चिताः महिलाः अपि वित्तस्य उपार्जनं कुर्वन्ति। अनेन तासाम् आत्मविश्वासवर्धनेन समं आवश्यकतापूर्तये पितृ-भ्रातृ-पति- पराश्रयितायाः मुक्तिः अपि प्राप्यते। ताभिः जीविकाचयने अपि अभिजात्यमानसिकता बन्धनात् मुक्तिः प्राप्ताः।

अधुना पुलिसलाइन, पैट्रोलपम्प, ऑटो-कैबड्राइवर आदि माध्यमेनापि स्वोपस्थितिं दर्शितवत्यः सन्ति स्त्रियः।

राजनीतिकस्तरे-राजनीतिकस्तरे महिलाः अद्यापि त्रयोत्रिंशत् प्रतिशतम् आरक्षणस्य स्वीकृति-प्रदानस्य वैचारिकोदारतायाः वञ्चिताः सन्ति। कतिपय नेत्रयः अवश्यमेव सन्ति परम् तुलनात्मकमाध्यमेन अहं स्पष्टीकर्तुमिच्छामि यत् एकविंशतिशताब्द्याः दशकद्वयं व्यतीते सत्यपि विकासस्य प्रत्येकस्मिन् क्षेत्रे स्त्रीणां स्थितिः सन्तोषजनका नास्ति। अधुनापि प्रत्येकं स्त्री भ्रूणः जन्मगृहीतुं संघर्षं करोति, लालन-पालनस्य समा व्यवस्था नास्ति, शिक्षाग्रहणस्य स्वतन्त्रता अपि सर्वेभ्यः सुलभा नास्ति, पतिचयनस्य स्वतन्त्रता वैवाहिकजीवने स्वतन्त्रता नास्ति, विवाह-विच्छेदस्य स्वतन्त्रता नास्ति, स्व मातृ-पितृ-दायित्व-वहनस्य स्वतन्त्रता नास्ति।

अन्ते एतावदेव कथयितुमिच्छामि यत् यावत् स्वतन्त्रपक्षीव असीमे आकाशे भ्रमणस्य, स्वजीवने सर्वं निर्णयग्रहणस्य, विना भयं बहिः गमनस्य, मित्रैः सह समययापनस्य, जीवनपथस्य प्रशस्तीकरणस्य अधिकारः न प्राप्यते, संघर्षस्य आवश्यकता अधुनापि अवशिष्यते। एतदर्थं आत्मबलस्य, विवेकस्य, बुद्धेः, दृढ़निश्चयस्य च आवश्यकता वर्तते। स्वं कथ्यं समापयामि रॉबर्ट फ्रास्टस्य पंक्तिभिः-

The woods are lovely dark and deep
but I have promises to keep
and miles to go before I sleep
and miles to go before I sleep-

* * *

अद्वैतवेदान्तविदुषी मदालसा

अमियकृष्णमिश्रः

शोधच्छात्रः

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः,

लखनऊपरिसरः।

वैदिककालादैवास्मिन्भारतराष्ट्रे बहवः विदुषयः स्त्रियः स्वप्रतिभाज्ञानाभ्याम् समाजे कीर्तिप्रतिष्ठे लेभिरे। तासां नारीणां महिमामाहात्म्यप्रतिभाज्ञानं प्राचीनसंस्कृतवाङ्गमये वर्णितास्ति। प्राचीनसंस्कृतवाङ्गमये नारीणामपि भूयसीमहिमावर्णितास्ति। ये केचन् जनाः आक्षेपारोपणं कुर्वन्ति यत् प्राचीनकाले भारते नारीशिक्षाऽप्रचलितासीत् तेभ्यः प्रत्युत्तरमस्तीदम्। न केवलं साहित्यक्षेत्रेऽपितु दार्शनिकक्षेत्रेऽपि नारीणां योगदानमस्ति। पुराणेष्वपि याद्रशीणां नारीणां वर्णनमस्ति। ये केचन् जनाः पुराणानि स्त्रीशिक्षाविरुद्धं स्वीकुर्वन्ति तेषां विचारस्य खण्डनमस्ति। पुराणेषु मार्कण्डेयपुराणं प्रमुखमस्ति। अस्मिन् पुराणे देवीमाहात्म्येन नारीप्रतिष्ठा निरूपितास्ति। पुराणेऽस्मिन् पञ्चविंशततमेऽध्याये मदालसया स्वपुत्रायलर्काय प्रदत्ताद्वैतवेदान्तोपदेशोऽति प्रसिद्धोऽस्ति। अनेनोपदेशेन मदालसैकाद्वैतवेदान्तविदुषीरूपे उपस्थिता बभूव। मदालसाचरित्रव्याजेनैव मार्कण्डेयपुराणकारः आदर्शस्त्रीसद्गुणान्यपि निरूपयामास। प्राचीनभारतीय-सामाजिकपरिदृश्यदृशा मार्कण्डेयपुराणकारेण मदालसारूपिणीऽद्वैतवेदान्तविदुषीकल्पनाति साहसिककल्पना प्रतीयते। स्मार्तकाले तु नारीशिक्षा निषिद्धैव बभूव। यद्यपि तस्याः निषेधतायाः कतिपयानि सामाजिककारणान्यप्यासन् यथा-वाह्याक्रमणानि तथाप्यास्याशयः इदं नास्ति यत् पूर्वकालेऽपि नारीशिक्षा निषिद्धासीत्। अस्य प्रमाणमस्ति मदालसायाः अद्वैतवेदान्तदर्शनज्ञानम्। मार्कण्डेयपुराणवर्णिता मदालसैका नागवंशीया राजतनयासीत्। मदालसया स्वसुताय अलर्काय निरूपितमद्वैतवेदान्तदर्शननिरूपणमैवं प्रकारेणऽस्ति-

१. **भौतिकशरीरापेक्षया आत्मस्वरूपमहत्त्वम्-** वेदान्तदर्शने आधारभूततत्त्वमस्ति आत्मा। सर्वेवेदान्तिकाः आत्मनः विषये विचारयामासुः। आत्मनः अभावे वेदान्तदर्शनमकल्पनीयमस्ति। वेदान्तदर्शनस्य सर्वेषु सम्प्रदायेषु आत्मनः स्वीकृतिरस्ति। वेदान्तदर्शनानुसारेण भौतिकशरीरापेक्षया शाश्वतात्मनः ज्ञानमनिवार्यमस्ति। वेदान्तदर्शनस्य कतिपयप्रतिपादककृतिषु आत्मनः वैशिष्ट्यं निम्नवत् वर्णितमस्ति-

कठोपनिषदि आत्मस्वरूपविषये लिखितमस्ति–

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१.२.१८॥

श्रीमद्भगवद्गीतायाम् आत्मनः वैशिष्ट्यविषये लिखितमस्ति–

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२.१८॥
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चौनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥२.१९॥

मार्कण्डेयपुराणे मदालसा स्वसुताय विक्रान्ताय अद्वैतवेदान्तदर्शनमोपदेशवती। सा भौतिकशरीरापेक्षया आत्मनः स्वरूपं वर्णयामास, यथा–भौतिकशरीरं तु पञ्चतत्त्वात्मकमैवास्ति। आत्मा शुद्धबुद्धनामरूपरहितास्ति–

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव ।
पञ्चात्मकं देहमिदं तवैतन्नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ॥२५.११॥
आत्मा निराकारास्ति। सा सर्वेषु प्राणिषु सदा तिष्ठति–
सर्वगो न प्रयातीति व्यापी देहेश्वरो यतः ॥२६.१८॥

अशरीरी आत्माविनाशिः अस्ति–

भूतैर्भूतानि मृद्यन्ते अमूर्तो मृद्यते कथम्।
क्रोधादीनां पृथग्भावात् कल्पनेयं निरर्थका॥२६.२२॥

२. **सांसारिकसम्बन्धक्षणिकता**–अद्वैतवेदान्तदर्शनानुसारेण सांसारिकसम्बन्धानि क्षणिकानि सन्ति। मदालसा सांसारिकसम्बन्धक्षणिकताविषये उवाच–

तातेति किञ्चित् तनयेति किञ्चिदम्बेति किञ्चिद्दयितेति किञ्चित्।
ममेति किञ्चिन्न ममेति किञ्चित् त्वं भूतसङ्घं बहु मानयेथाः ॥२५.१५॥

३. **शारीरिकपरिवर्तनानां प्रति आत्मनः तटस्थता** – अद्वैतवेदान्तदर्शनानुसारेण भौतिकशारीरिकपरिवर्तप्रत्यात्मा तटस्थास्ति। भौतिकपरिवर्तनैः आत्मा सर्वप्रकारेणऽप्रभावितास्ति। सर्वेवेदान्तदार्शनिकाः शारीरिकपरिवर्तनानां प्रति मानवस्य निरपेक्षतोपदेशयामासुः। कठोपनिषदे आत्मनः शारीरिकपरिवर्तनप्रति तटस्थताविषयेऽग्रवत् लिखितमस्ति–

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं..........॥१.३.१५॥

मार्कण्डेयपुराणे मदालसा शारीरिकाभिमानं निषेधयन्ती उवाच–

भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः।
अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न तेऽस्ति हानिः ॥२५.१३॥
त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिंश्च देहे मूढ़तां मा व्रजेथाः।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कञ्चुकस्तेऽपि नद्धः ॥२५.१४॥

४. **शरीरविषयकाभिमान-निषेधः**– अद्वैतवेदान्तदर्शने शारीरिकाभिमाननिषेधोऽति महत्वपूर्णोऽस्ति। सर्वेऽद्वैत-वेदान्तदार्शनिकाः शारीरविषयकाभिमानविरुद्धाः आसन्। ते स्वीकारयामासुः यत् क्षणिकशरीरविषये कथं अभिमानः? श्रीमद्भगवद्गीतायां शरीरविषयकमोहं निषेधयन् कृष्णोवाच–

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥२.१३॥

मार्कण्डेयपुराणे शारीरिकाभिमानं निषेधयन्ती मदालसोवाच–

यानं क्षितौ यानगतञ्च देहं देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः।
ममत्वबुद्धिर्न तथा यथा स्वे देहेऽतिमात्रं वत मूढ़तैषा ॥२५.१८॥

सोवाच यत् भौतिकशरीरं रूदनमपि करोति न तु आत्मा–

न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्मना शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम्।
विकल्प्यमाना विविधा गुणास्तेऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु ॥२५.१२॥

५. **सांसारिकभोगानन्दखण्डनम्**– सर्वेऽद्वैतवेदान्तदार्शनिकाः सांसारिकभोगविलास- विरुद्धे उवाच यत् तेषु लिप्सा लिप्तः च न भवेत्। तेषु कल्पितानन्दात्मकसांसारिकभोगबन्ध नवशजनाः ब्रह्मच्युताः भवन्ति। कोऽपि विद्वान् तेषु भोगेषु संलिप्तः न भवति। कठोपनिषदि नचिकेता सांसारिकभोगत्याज्यताविषयेऽग्रवत् उवाच–

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।

अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥१.१.२६॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो॥१.१.२७॥

अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥१.१.२८॥
स त्वं प्रियान्प्रियरूपाँश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः।
नैताँ सृङ्काँ वित्तमयीमवाप्तो यस्याँ मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥१.२.३॥
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥१.२.४॥
कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः ॥१.२.११॥

बृहदारण्यकोपनिषदे याज्ञवल्क्यं मैत्रेयी पपृच्छ यत्–

"यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन
पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति॥२.४.२॥

तदा निषेधयन् याज्ञवल्क्योवाच–

नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां
जीवितं तथैव ते जीवितण्स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति ॥२.४.२॥

सर्ववेदान्त–सिद्धान्त–सार–सङ्ग्रहे सांसारिकभोगानन्दखण्डयन् लिखितमस्ति–

प्रदृश्यते वस्तूनि यत्र दोषः न तत्र पुंसोऽस्ति पुनः प्रवृत्तिः ॥२६॥
अत्रापि चान्यत्र च विद्यमानपदार्थसंमर्शनमेव कार्यम्।
यथाप्रकारार्थगुणाभिमर्शनं सन्दर्शयत्येव तदीयदोषम् ॥२७॥
सुखं किमस्त्यत्र विचार्यमाणे गृहेऽपि वा योषिति वा पदार्थे ॥४२॥
अविचारितरमणीयं सर्वमुदुम्बरफलोपमं भोग्यम्।
अज्ञानामुपभोग्यं न तु तज्ज्ञानां भवेद्धितद्भोग्यम् ॥४३॥

मार्कण्डेयपुराणे मदालसा सांसारिकभोगविरुद्धे उवाच–

दुःखानि दुःखोपशमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढ़चेताः।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानात्यविद्वान् सुविमूढ़चेताः ॥२५.१६॥

सा उवाच यत् नारीजन्यसुखं वस्तुतः सुखं नास्ति। तत्तु नरकमस्ति–

तत् स्थानं रतेः किं नरकं न योषित् ॥२५.१७॥

६. **अद्वैतवादः–** सर्ववेदान्तसम्प्रदायेषु अद्वैतवेदान्तं प्रमुखमस्ति। अद्वैतवेदान्तानुसारेण आत्म–परमात्मामध्ये कोऽपि भेदः नास्ति।

ईशावास्योपनिषदानुसारेण-

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं तो न विजुगुप्सते ॥६॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥१६॥

श्रीमद्भगवद्गीतायां श्रीकृष्णोवाच यदविनाशि आत्मा नित्य-जन्मरहिता-अव्ययास्ति। तस्य वधं कोऽपि जनः कथं करोति अन्यजनः कथं तस्य वधं कारयति च-

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२.२१॥

वेदान्तसारे सदानन्दः अद्वैतवादनिरूपयन् लिलेख-

दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम्।
अलेपकं सर्वगतं यद्द्वयं तदेव चाहं सततं विमुक्तमोम्॥१९५॥

मार्कण्डेयपुराणे मदालसा अद्वैतवादं प्रतिपादयन्ती उवाच यत् यतः सर्वेषु जनेषु एकैव पुरुषोऽधिष्ठते तर्हि कथं कोऽपि जनः कस्यापि शत्रुमस्ति मित्रं वा-

एक एव शरीरेषु सर्वेषु पुरुषो यदा ।
तदास्य राजन् कः शत्रुः को वा मित्रमिहेष्यते ॥२६.२१॥

अद्वैतवेदान्तदर्शनानुसारेण मानवस्य प्रथमकर्त्तव्यमस्ति आत्मबोधप्राप्तिः। स्वमातामदालसाः उपदेशेन तस्याः पुत्राः आत्मबोधं लेभिरे-

तथा तथात्मबोधंच सोऽवाप मातृभाषितैः ॥२६.२॥

एवं प्रकारेण सिद्ध्यते यत् मदालसैकाद्वितीया विदुषी आसीत्। सा स्वपुत्रायद्वैतवेदान्तदर्शनमोप-देशयामास। एवं प्रकारेण इदमपि सिद्ध्यते यत् प्राचीनकाले भारतवर्षे स्त्रिजनेभ्यरपि शिक्षा प्रचलितासीत्। न केवलं सामान्यविषयशिक्षापितु दर्शनशास्त्रशिक्षापि नार्यः लेभिरे। अद्वैतवेदान्ततुल्यं अद्वितीयशास्त्रेऽपि स्त्रीणाम् अधिकारः आसीत्। अतः अस्याः धारणायाः खण्डनं भवति यत् प्राचीनकाले पौराणिकविचारप्रभाववश-भारतवर्षे नारीशिक्षा अप्रचलितासीत्। प्राचीनकालीनविषमपरिस्थितिष्वपि मदालसामाध्यमेन मार्कण्डेयपुराणकारः नारीशिक्षा समर्थयामास।

सन्दर्भग्रन्थाः-

१. **श्रीमार्कण्डेयपुराण(भाषाटीकासहितम्)-** अनुवादकः-बा.वृन्दावनदासः, प्रकाशकौ-लालाश्यामलालहीरालालौ, श्यामकाशीप्रेसम्, मथुरानगरम्, प्रथम- संस्करणम् 1941 खिष्ताब्दम्

२. **श्रीमद्भगवद्गीता-** गीताप्रेसम्,गोरखपुरम्, षष्ट्याधिकशतं पुनर्मुद्रितसंस्करणम् विक्रमीसंवत् 2064

३. **कठोपनिषद्-** ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेसम्, गोरखपुरम् षड्त्रिंशतात्मकं पुनर्मुद्रितसंस्करणम् विक्रमी सम्वत् 2074

४. **ईशावास्योपनिषद्-** ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेसम्, गोरखपुरम् षड्त्रिंशतात्मकं पुनर्मुद्रितसंस्करणम् विक्रमी सम्वत् 2074

५. **सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सार-सङ्ग्रह-** श्रीमच्छङ्कराचार्यः, अनुवादकः-ऋ.कु. रामस्वरूपशर्मा, प्रकाशकः- सनातनधर्म छापाखाना, मुरादाबादनगरम्

६. **बृहदारण्यकोपनिषद्-** सानुवादशाङ्करभाष्यसहितपञ्चदशपुनर्मुद्रितसंस्करणम् विक्रमसम्वत् 2068, गीताप्रेसम्, गोरखपुरम्,

७. **वेदान्तसारः-** सदानन्दः, सम्पादकौ-डॉ.एच.एनः यादवः डॉ. रेखाकौशलश्च, हरीशप्रकाशमन्दिरम्, आगरानगरम्

* * *

अद्धभुत रामायण में एक अध्ययनः शक्ति स्वरूपा सीता

डॉ. हर्ष बाला
सहायकाचार्या
जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय, नई दिल्ली

रामायण आदिकाव्य के नाम से प्रचलित प्रथम महाकाव्य है, संपूर्ण विश्व के लिए प्रेरणादायक वाल्मीकि रामायण की वेद तुल्य प्रतिष्ठा है, रामकथा की व्यापकता और लोकप्रियता का आधार वाल्मीकि रामायण ही है। 24000 श्लोकों में लिखी गई रामायण में विष्णु के अवतार के रूप में राम की प्रतिष्ठा है, कालांतर में परवर्ती पुराणों और उप–पुराणों में राम विषयक सामग्री उत्तरोत्तर लगी थी, संस्कृत साहित्य तथा अन्य साहित्य में स्वतंत्र रूप से राम विषयक रचनाएं होने लगी तथा धार्मिक साहित्य में अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण और आनंद रामायण आदि अनेक रामायणों की रचना की गई। धार्मिक ग्रंथों की श्रृंखला में अद्भुत रामायण का महत्वपूर्ण स्थान है, अद्भुत रामायण 27 सर्गों और 1343 श्लोकों में लिखी गई कृति है जिसमें सीता के अद्भुत स्वरूप और पराक्रमों का वर्णन किया गया है। अद्भुत रामायण अधिकांश अध्यात्म रामायण से प्रभावित दिखाई देती है, रामचरितमानस के प्रथम खंड में अद्भुत रामायण का प्रभाव परिलक्षित होता है, इस दृष्टि से अद्भुत रामायण यह शीर्षक यथार्थ दिखाई देता है जैसे अध्यात्म रामायण में राम के मूल स्वरूप का तात्विक दृष्टि से वर्णन किया गया है, उसी प्रकार अद्भुत रामायण में आदिशक्ति के रूप में सीता के मूल स्वरूप का वर्णन किया गया है। अद्भुत रामायण में जब देवी सीता विकराल रूप धारण करके सहस्त्रमुख रावण का वध करती है तब राम साक्षात् शक्ति स्वरूपिणी सीता की सहस्त्रनाम से स्तुति करते हैं ।

प्रधानपुरुषेशाना महापुरुषसाक्षिणी।
सदा शिवा वियन्मूर्तिदेवमूर्तिरमूर्तिका ॥

(अद्भुतरामायण, सर्ग 25 श्लोक–25 से 152)

अद्भुत रामायण में यह भी स्पष्ट लिखा है जो इस अद्भुत सहस्त्रनाम का नित्य पाठ करता है, उसे परम पद की प्राप्ति होती है ।

भारद्वाज महाभाग यशचौतस्तोत्रमदभुतम ।
पठेद्वा पाठण्येद्वापि याति परमं पदम ॥

अद्‌भुत रामायण की कथा को तीन भागों में बांटा गया है जिसमें 2 से लेकर 8 सर्ग तक रामजन्म और सीता जन्म का कारण बताया गया है। दूसरे भाग में वाल्मीकि रामायण कथा का बहुत ही संक्षिप्त रूप से निर्देश किया गया है, सत्य कहा जाए तो अद्‌भुत रामायण की रचना का उद्देश्य रामायण के कथा प्रसंगों का वर्णन करना नहीं है बल्कि इसमें राम और सीता के पुरुष और प्रकृति रूप में वर्णन करने के लिए ही कुछ प्रसंगों को आधार बनाया गया है। इसके पश्चात् अद्‌भुत रामायण की कथावस्तु का तीसरा भाग अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसमें 19 से 27 सर्ग तक की कथा इस कृति की विशेष और अद्‌भुत कथा है, जैसा कि सभी को ज्ञात है आदिकाव्य रामायण में वाल्मीकि जी ने 24000 श्लोकों में रामायण में पुरुष की प्रधानता बताई है, जबकि अद्‌भुत रामायण में प्रकृति अर्थात् शक्ति स्वरूपा सीता का प्रभाव वर्णित किया गया है, जैसे जगत की उत्पत्ति प्रकृति और पुरूष से होती है, उसी प्रकार प्रकृति के प्रतीक रूप में असुरों का विनाश राम और सीता ही करते हैं। अतएव प्रस्तुत कृति में सीता अर्थात् जानकी के महात्म्य को प्रधानता दी गई है, यथार्थ में देखा जाए तो यह संपूर्ण कथा अध्यात्म परक है, यहां रामब्रह्म है और सीता शक्ति का अवतार है अत: यहाँ सीता और राम का महात्म्य वर्णित है। भारद्वाज ऋषि और वाल्मीकि के संवाद से, सीता की ब्रह्म रूप में स्तुति करने के कुतूहलवर्धक दृश्य से इसे जानने की उत्सुकता ओर बढ़ जाती है। अद्‌भुत रामायण की कथा में मुख्य रूप से सीता के चरित्र को अंकित किया गया है, भारद्व ाज ऋषि के पूछने पर मुनि वाल्मीकि सीता का परिचय देने से पहले उनकी स्तुति करते हैं, उनको सृष्टि की आदिभूत, महागुण संपन्न बताते हैं, वह कहते हैं– "जानकी सीता तप और स्वर्ग की सिद्धि है, ऐश्वर्या रूप है, सती है, वह गुणमयी, गुणातीत और गुणात्मिका होने से सर्वकारण स्वरूपिणी है, वह महाकुंडलिनी शक्ति है, वह ब्रह्म भी है और परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न है"।

सीता और राम के तत्वज्ञान से मनुष्य के हृदय की ग्रंथि का भेदन हो जाता है, सृष्टि में व्याप्त यह परम तत्व जब राम और सीता के रूप में अवतार लेते हैं, तब अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना होती है। सीता जन्म की कथा अनेक ग्रंथों में वर्णित की गई है यथा पुराणों में देखे तो स्कंदपुराण, देवी भागवत् पुराण, आनंद रामायण, अद्‌भुत रामायण इत्यादि सभी ग्रंथों में सीता के जन्म की कथा अद्‌भुत ढंग से वर्णित की गई है, किन्तु अद्‌भुत रामायण के अनुसार सीता जन्म की कथा इस प्रकार है –एक बार रावण ने कठोर तपस्या की और ब्रह्मा जी से वरदान मांगा कि "सुर, असुर, यक्ष, पिशाच, किन्नर, अप्सराओं के गण इत्यादि मुझे मार न सके और जब मैं अपने ही अज्ञान के कारण अपनी कन्या के प्रति कामवासना से प्रेरित हो जाऊं, तब मेरी मृत्यु हो"।

न सुरा नासुरा यक्षाः पिशाचोरगराक्षसाः।
विद्याधराः किन्नरा वा तथैवाप्सरसां गणाः॥
न हन्युर्मा कंथचित्ते देहि मे वरमुत्तमम् ।
अन्यच्च ते वृणे ब्रहमस्तच्छृणुष्व पितामह ॥

अद्भुत रामायण- आठवां सर्ग, श्लोक-10,11

रावण ने सोचा किसी मनुष्य में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह मुझे मार सकें इसलिए उसने वरदान में जानबूझकर किसी मनुष्य का उल्लेख नहीं किया। वास्तव में 10 सिर वाला रावण अपने 10 गुणा अभिमान के कारण ही मारा गया। वरदान पाने के बाद रावण ने सभी ऋषियों मुनियों को दंडकारण्य में अग्नि के समान कांतिमान देखा तो वह चिंता मग्न हो गया, उसने सोचा ये सभी महात्मा तो अजेय है, इनकी हत्या से तो मेरा अमंगल होगा, मैं इन पर विजय कैसे प्राप्त करूँगा ।

एकदा रावणो राजा दण्डकारण्यम् आगतः।
तत्रऋषीन्निकल्पांश्च दृष्ट्वा मनस्यचिन्तयत् ॥
एतानजित्वा हि कथं त्रिलोकीजयभागहम् ।
एषां वधेन च श्रेयो न पश्यामि महात्मानम् ॥

(अद्भुतरामायण-अष्टम सर्ग, श्लोक -15,16)

तब वह महात्माओं के पास गया और बलपूर्वक उनके शरीर से बाण की नोक से रुधिर निकालकर एक कलश में संग्रहित करने लगा। रावण ने जो कलश लिया था, वह कलश खाली नहीं था, गृत्समद् नामक एक ब्राह्मण ने लक्ष्मी को अपनी कन्या के रूप में प्राप्त करने की इच्छा से इस कलश में दूध रखा हुआ था और जब वह लक्ष्मी की कन्या रूप में प्राप्ति के लिए तप कर रहा था, तब रावण आया और कपट से उस कलश को ले गया और उसमें ब्राह्मणों के रुधिर को एकत्रित करने लगा, सभी महात्माओं का रक्त एकत्रित करके के बाद रावण कलश अपने घर ले गया और मंदोदरी को कलश देकर समझाया कि मुनियों का यह रुधिर विष से भी अधिक तीक्ष्ण है और उस कलश को सुरक्षित रखने का आदेश दे दिया। तब एक दिन मंदोदरी अपने अभिमानी, लंपट, कामी और अन्य स्त्रियों में रत रहने वाले पति से स्वयं को तिरस्कृत समझकर आत्महत्या के लिए तत्पर हुई और उसने सोचा कि आत्महत्या के लिए कलश के रुधिर का ही पान करना ही सर्वोत्तम है और उसने उस कलश के रक्त का पान कर लिया, किंतु उसकी मृत्यु नहीं हुई बल्कि वह तेजस्वी गर्भ से युक्त हो गयी और तब उसने सोचा एक वर्ष से अपने पति से दूर रहते हुए सहवास ना होने के कारण पति के सामने गर्भवती होने पर मै गर्भ के विषय में क्या कहूँगी, इस चिन्ता से व्याकुल और दूसरा रावण के वरदान के अनुसार यह कन्या ही रावण की मृत्यु का

कारण थी, उसके समाधान हेतु मंदोदरी ने कुरुक्षेत्र स्थान पर जाकर अपने गर्भ को पृथ्वी में गाड़ दिया, जिसे कालांतर में जनक ने प्राप्त किया और जनक के द्वारा दिव्य कन्या को प्राप्त करने पर आकाश से पुष्पों की वृष्टि होने लगी, जिसे देखकर राजा जनक अत्यंत आश्चर्यचकित हुए ।

पुष्पवृष्टिश्च महती पपात कन्यकोपरि।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं राजा विस्मयमागतः॥

(अद्भुत रामायण-अष्टम सर्ग, श्लोक-38)

अद्भुत रामायण की यही मूल कथा देवी भागवत पुराण में भी कुछ परिवर्तन के साथ कही गई है जिसमें बताया गया है कि जब रावण मंदोदरी से विवाह करते हैं तो उस समय एक आकाशवाणी होती है "कि तुम मंदोदरी से विवाह मत करो, इसकी कन्या तुम्हारा नाश करने वाली होगी" लेकिन मंदोदरी की सुन्दरता पर मोहित रावण ने आकाशवाणी को अनसुना करके मन्दोदरी से विवाह कर लिया। विवाह के उपरांत मंदोदरी के गर्भ से एक तेजस्विनी कन्या का जन्म हुआ और उस भविष्यवाणी से बचने के लिए दिव्य कन्या को भूमि में दबा दिया गया। सीता जन्म की अद्भुत कथा आनंद रामायण में भी कुछ अन्य ढंग से कही गई है। इस कथा में एक वेदवती नामक कन्या था, वेदवती एक दिन तपस्या कर रही थी, रावण स्वतन्त्र रूप से घूमता हुआ आया और उसने वेदवती के साथ अभद्रपूर्ण व्यवहार किया, जिससे वेदवती आक्रोश में आ गई और उसने अपनी तेजयुक्त संपूर्ण चेतना को एक कलश में डाल दिया, भयभीत रावण फिर से उस कलश को लेकर अपने साथ लंका में गया और वह कलश अपनी पत्नी मंदोदरी को दे दिया। तो यहाँ भी पुनः उसी प्रसंग की पुनरावृति होती है "मंदोदरी ने सोचा यह कोई अद्भुत चेतना है तब उसने उस कलश को मिथिला की भूमि में दबा दिया" वही रामचरितमानस में देखा जाए तो वहां सीता जन्म की कथा के बारे में तुलसी मौन है। वास्तव में सीता जन्म की मूलकथा सभी ग्रंथों में एक जैसी ही है मूलकथा एक होते हुए भी कहीं-कहीं समानांतर समानताएं दिखाई दे रही है। इससे स्पष्ट होता है सभी ग्रंथों का परस्पर एक दूसरे पर पूर्ण प्रभाव था, और सभी ग्रंथों की अध्यननुसार ज्ञात होता है कि सीता मंदोदरी और रावण की बेटी है। वास्तव में देखा जाय तो देवी सीता रावण की पुत्री होते हुए भी दिव्य ऋषि चेतना है, राक्षसी चेतना नहीं बल्कि अद्भुत चेतना और शक्ति स्वरूपा है, वह परिश्रम से प्राप्त होती है, जब जनक जी ने हल चलाया और परिश्रम किया फलस्वरूप उन्हें सीता प्राप्त हुई। अद्भुत रामायण के तीसरे भाग में सहस्त्रमुख रावण और शक्ति स्वरूपा सीता की कथा इस प्रकार है -जब वनवास की अवधि पूरी करके राम अयोध्या लौटे, राम का राज्याभिषेक हुआ सबने उनका अभिनंदन किया और जब अगस्त्य आदि ऋषि श्री राम की स्तुति कर रहे थे, तब उन्होंने कहा कि आपने रावण का वध करके संपूर्ण जगत का उद्धार किया है, यह बात सुनकर सीताजी हंस पड़ी और बोली -"श्री राम की यह प्रशंसा परिहास तुल्य है" अगर आप सब मुनियों की इच्छा हो, तो मैं आपके चरणों में प्रणामपूर्वक एक रहस्य का उद्घाटन

करना चाहती हूँ, तब मुनियों ने भी उत्सुकता पूर्वक गोपनीय सत्य को जानने की इच्छा प्रकट की, तब सीता जी ने एक अद्‌भुत प्रसंग का वर्णन किया। यह कथा अद्‌भुत रामायण के 17 वें सर्ग में विस्तार पूर्वक बताई गई है। सीता जी ने बताया–जब सीता बहुत छोटी थी, तब उनके घर में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण भक्त आए सीता ने उनकी बहुत सेवा की और महात्मा के साथ सत्संग का बहुत लाभ उठाया, तब ब्राह्मण ने सीता को एक कथा सुनाई जो कि इस प्रकार है – सुमाली नामक राक्षसश्रेष्ठ की कन्या कैकसी और विश्वश्रवा मुनि की पत्नी ने दो पुत्रों को जन्म दिया, पहला पुत्र का नाम दशमुख रावण और दूसरा सहस्त्रमुख रावण ये दो भाई थे, दशमुख रावण का वध तो राम ने कर दिया, परंतु सहस्त्रमुख रावण अभी जीवित है और यह अलौकिक ऐश्वर्या से संपन्न पुष्कर द्वीप का राजा है और सदा ऋषियों मुनियों को पीड़ित करता रहता है। यह सहस्त्रमुख रावण संसार में किसी को भी बली न समझते हुए सबको पीड़ित करता था जैसे ही राम ने सहस्रमुख रावण का नाम सुना तो उन्हें बडा आश्चर्य हुआ और यह सुनते ही राम उत्तेजित हो उठे और सहस्त्र रावण से युद्ध करने के लिए अपने भाइयों, दल–बल और सीता के साथ पुष्कर द्वीप में पहुंच गए, वहाँ जाकर उन्होंने सहस्रमुख रावण के साथ युद्ध किया और पराजित हो गए, राम सहस्रमुख रावण के बाण से घायल होकर अपने पुष्पक विमान में मूर्छित हो गये ।

ततो रामो महाबाहुः पपात पुष्पकोपरि।
निःसंज्ञो निश्चलशवासीद्वाहा भूतानि चक्रिरे॥

(अद्‌भुत रामायण– तेईसवा सर्ग)

23वें सर्ग में सहस्रमुख रावण का वध करके वीरता का परम उत्कर्ष प्रदर्शित करने वाली, शक्ति स्वरूपा सीता का यहाँ अद्‌भुत वर्णन किया गया है, राम के मूर्छित हो जाने पर भी जानकी के मुख पर शोक की रेखा नहीं थी बल्कि हास्य था, सहस्रमुख रावण के वध का संकल्प लेकर सीता ने उच्च स्वर में अट्टहास किया, अपना सौम्य रूप त्यागकर महाविकराल रूप धारण कर लिया और क्षणमात्र में ही सहस्त्रमुख रावण का सिर काट डाला और रावण की संपूर्ण सेना को नष्ट करके अत्यंत आनंदित हुई ।

शिरांसि रावणस्याशु निमेषान्तरमाततः।
खड्गेन तस्य चिच्छेद सहस्त्राणीह लीलाया॥

(अद्‌भुत रामायण– सर्ग 23)

उसी समय उनके रोम कूपों से असंख्य मातृकाए प्रगट हो गई, यह मातृकाए शत्रु को भयभीत करने वाली थी, वायु के समान वेग वाली थी। सीता ने अकेले ही असुरों का वध किया और आनंदमग्न हो गई, लेकिन उनकी इस लीला से संपूर्ण सृष्टि डगमगा गई, देवता नगण्य हो गए, सीता के चरणों से पीड़ित पृथ्वी पाताल में जाने लगी और सभी लोकपाल देवता, पितृलोक

के निवासी, ब्रह्मा जी और सभी ऋषि–देवतागण जाकर शक्ति स्वरूपा सीता को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करने लगे, कार्यपूर्ण होने के बाद वह चाहते थे, सीता रौद्र एवं भयंकर रूप छोड़कर सौम्य रूप धारण करें, क्योंकि जब किसी महाशक्ति के प्रयोग की आवश्यकता न हो और यदि वहाँ महाशक्ति का प्रयोग किया जाए, तो वह शक्ति अनीष्ट परिणाम देने वाली होती है। जिस प्रकार सीता ने ज्ञान, क्रिया और इच्छाशक्ति के समन्वय से रावण का संहार किया, संहार लीला के पश्चात् सृष्टि की स्थिति का निर्वाह होना ही चाहिए। सीता सर्वशक्तिमान है वह सृष्टि, स्थिति और संहार में समर्थ है लेकिन उस समय सृष्टि के कल्याण के लिए और पृथ्वी को थामने के लिए भगवान शिव ने स्वयं को शव के समान सीता के नीचे स्थित किया, उस समय संसार के कल्याण के लिए स्वयं शिव को भी जानकी की शरण में जाना पडा क्योंकि कल्याण तत्व ही संहार का निवारण कर सकता है–

सर्वभारसहो देवः सीतापादतले स्थित ।
शवरूपो विरूपाक्षः सुस्थिताभुध्दरास्थिता तदा ॥

(अद्‌भुत रामायण– सर्ग 23)

तब सीता के मन, बुद्धि की वृत्तियों को ऊर्ध्व लोक की शक्तियों ने नियंत्रित किया। ब्रह्मा जी ने उनकी स्तुति की और कहा– "शांति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति यह परमेश्वर के ही रूप है और इनका एकाकार ही परम शक्ति है इसलिए पराशक्ति स्वयं सीता है और परम परमात्मा की प्राप्ति उनके संबंध से ही हो सकती है" । सीता जी स्वयं कहा है – मुझे पराशक्ति जानो, मै अनन्य अविनाशी हूँ, मुमुक्षु जन मुझे ही देखते हैं ।तब सब ऋषिगणों की स्तुति सुनकर सीता कहती है– "जब तक श्री राम मृतक के समान सोए हुए हैं ,मैं जगत के हित की इच्छा क्यों करूं, मैं तो संपूर्ण जगत को ग्रस जाऊंगी" । इस प्रसंग में यह दिखाई देता है कि वर्तमान युग में भी विज्ञान शक्ति भगवत रहित होकर विनाश के लिए ही प्रेरित करती है, जब सीता ने इस प्रकार कहा – तो ब्रह्मा जी ने श्री राम को अपने हाथ से स्पर्श किया और राम होश में आ गए, और राम ने देखा सीता सहस्त्र ज्वाला समूहों से व्याप्त थी, करोड़ों सूर्य के प्रकाश पुंज से परिपूर्ण थी, उसकी जटा मानो आग की लपटें, हाथ में त्रिशूल होने के कारण उनका रूप प्रथम दृष्टि में तो घोर भयानक प्रतीत होता था परंतु उनके मुख पर सौम्यता और शांति थी, उनके सिर पर कोटि चंद्रमा के तेज सा जगमगाता हुआ मुकुट था, चरण नूपुरों से सुशोभित थे,उन्होंने दिव्य वस्त्र और माला धारण किए हुए थे, दिव्य गंध से युक्त, सीता जी ने हाथ में गदा, शंख और चक्र धारण किए हुए थे, अर्ध चंद्रमा के समान उनके ललाट पर लक्ष्मी का तेज था, उज्जवल तिलक अत्याधिक सुंदर दिख रहा था, उनके गले में सोने की दिव्य माला सुशोभित थी, तीन नेत्रों से युक्त उनको राम ने शिव शक्ति रूप में जाना, मानो वह शांत मुद्रा में ब्रह्मांड में सर्वव्यापक थी । उनके चरण कमलों

में ब्रह्मा, इंद्र आदि देव प्रार्थना के लिए सिर झुकाए खड़े थे, सीता जी के ऐसे दर्शन करके राम जी का मन तन्मय हो गया और उसी समय उनके हृदय से सीता जी के एक सहस्त्रनाम उत्पन्न हुए और सहस्त्रनामों से सीता जी की स्तुति करते हुए उनको प्रणाम करते हुए श्री राम प्रसन्न चित्त हो गए, इस समय सीता का शांत और सौम्य रूप था उन्होंने सीता के महाकाली स्वरुप भयंकर रूप को देखा, तो वह डर गए, तब ब्रह्मा जी ने सहस्रमुख रावण के वध का सारा प्रसंग सुनाया, सीता जी की स्तुति करते हुए ब्रह्मा जी ने राम को कहा "सीता के सहित ही आप जगत का सर्जन और संहार कर सकते हैं इनके बिना आप कुछ नहीं कर सकते, यह दिखाने के लिए ही साक्षात जानकी जी ने यह कार्य किया है'। तब राम जी ने भी सहस्रनाम रूप से सीता जी की स्तुति इस प्रकार की –

रूपं तवाशोषकलाविहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम ।
अनादिमध्यातंमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात्॥

(अद्‌भुतरामायण, सर्ग 23 श्लोक–25)

"तुम्हारा रूप सब कला से विहीन, अगोचर, निर्मल एक रूप है आदि–अंत–मध्य रहित हो मैं तुमको प्रणाम करता हूं, तुम युगों में सतयुग, मार्गों में आदित्य, वाणियों में सरस्वती, सुंदर रूप वालों में लक्ष्मी, शक्तियों में अरुंधति तथा पक्षियों में गरुड़ हो, सब स्थानों पर जाने वाली जन्म और विनाश से रहित हो, तुम्हारे रूप को मैं प्रणाम करता हूँ" । सीता स्वयं कहती है "मुझे महेश्वर को प्राप्त करने वाली परम शक्ति जानो, मैं अनन्य अविनाशी, एक हूँ, मैं सब भावों की आत्मा, सब के अंतर में स्थित शिवा, मैं निरंतर रहने वाली हूं, सब जानती हूँ, सबको प्रवृत्त करने वाली हूँ।

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ।
अनन्याप्ययामेकां यां पश्यन्तु मुमुक्षवः॥

(अद्‌भुतरामायण– तेईसवां सर्ग)

शक्ति के विभिन्न रूपों की चर्चा अदभुत रामायण मैं इस प्रकार की गई है–

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम् ।
सर्वसामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मितः॥

अद्‌भुत रामायण के अध्यनन से ज्ञात होता है, सीता जी को शक्ति स्वरूपा बताया गया है, प्रस्तुत शोध पत्र में नौ स्वरूपों को इस प्रकार विभाजित किया है, सीता में जो नव शक्तियां समाहित है वे इस प्रकार है–

१. **पहली महाकुंडलिनी के रूप में सीता "योगशक्ति" है** - सीता को अयोनिज कहां गया है अर्थात वह भोग का फल नहीं है, योग का फल है, जानकी सांसारिक भोग का फल नहीं है इसलिए उसे योग शक्ति कहा गया है-जैसे उनकी जन्म कथा से ज्ञात हुआ है। अद्‌भुत रामायण में सीता को कुंडलिनी शक्ति के रूप में जाना गया है।

महाकुंडलिनी सर्वानुस्यूता ब्रह्म संज्ञिता।
यस्या विलासितं सर्वम् जगदेतच्चराचरम्।।

(अद्‌भुतरामायण, प्रथम सर्ग, श्लोक-16)

जैसे हमारे शरीर में विद्यमान कुंडलिनी शक्ति योग के द्वारा हमारी मुक्ति करवाने वाली है और उसको जागृत करने के लिए योग किया जाता है, उसी प्रकार योग शक्ति से सीता को जागृत करने की बात कही गई है, उसी सीता तत्व को हम योगशक्ति का नाम दे सकते हैं जानकी का बैठना योगासन के रूप में दिखाई देता है, योगशास्त्र का अध्ययन करने वाले सीता की छवि देख कर संपूर्ण योगशास्त्र को जान सकते हैं क्योंकि योगी की प्रक्रिया भी सरल नहीं है क्योंकि योग में भी अनेक समस्याएं और बाधाएं आती है लेकिन कुंडलिनी जागरण के बाद समस्त बाधाएं दूर हो जाती है इसलिए हमारी दृष्टि में मां जानकी योगशक्ति है, युग चेतना है।

2. **दूसरी परब्रह्म परमात्मा की शक्ति रूपा सीता "ब्रह्मशक्ति" हैं** जिसको ब्रह्म की आह्लाद कारिणी शक्ति कहा गया है जिसका दर्शन हमने सहस्त्रमुख रावण के वध के प्रसंग में जाना।

3. **तीसरी शक्ति का नाम है "वियोगशाक्ति"** - सीता वियोगशक्ति की प्रतीक है जिसमें वियोग को सहने की शक्ति है, वास्तव में वियोग सहना भी आसान नहीं है-जैसे योग को जानना आसान नहीं है, वैसे ही वियोग सहना भी आसान नहीं है। वियोग भी एक योग ही है। योग बताना आसान हो सकता है किंतु वियोग के बारे में बताना बहुत मुश्किल है। सीता ने अनेक बार वियोग को बड़े धैर्य से सहन किया, विवाह के पश्चात् अपने पिता के घर से वात्सल्य वियोग को सहन किया, विवाह के उपरांत अपने ससुराल में चले जाना, यह वियोग तो सभी स्त्रियों को सहना ही पड़ता है तो सीता के वियोगशक्ति रूप को हम संसार की सभी नारी जाति में देख सकते है। दूसरा वियोग सीता को अपने अयोध्या की रानी बनने से वंचित होकर सहना पड़ा, पारिवारिक सुख का वियोग सहना पड़ा और वनवास को भोगना पड़ा। तीसरी बार वनवास काल में रावण के द्वारा सीता अपहरण किया जाने पर फिर सीता को राम वियोग को सहना पड़ा। चौथी बार सीता का राम के द्वारा त्याग करने पर फिर से वियोग की अवस्था को दर्शाता है जबकि बाल्मीकि रामायण में यह प्रक्षिप्त माना गया है, किन्तु इसमें सीता में वियोग सहन करने की एक प्रखर शक्ति का दर्शन होता है।

४. **सीता में विद्यमान चौथी शक्ति है** - "इच्छा शक्ति" सीता की इच्छा शक्ति अद्‌भुत है यद्यपि कहीं कहीं उसकी इच्छा शक्ति डावाडोल हुई लेकिन मां भवानी रूप ने इच्छा शक्ति को दृढ किया। अदभुत रामायण में सीता स्वयं सहस्त्रमुख रावण के वध के समय दृढ इच्छाशक्ति से राक्षसी शक्तियों का विनाश करने के लिए आगे बढती है।

५. **पांचवी शक्ति का नाम है "क्रिया शक्ति"** जिसमें सीता उद्‌भव, स्थिति और संहार का प्रतीक है क्रिया शक्ति का प्रतीक है। अपनी क्रिया शक्ति से सबका कल्याण करती है उन्होंने स्वयं कहा है

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ।
अनन्याप्ययामेकां यां पश्यन्तु मुमुक्षवः॥

६. **छठी शक्ति "ज्ञान शक्ति" है,** सीता ज्ञान शक्ति है, परमज्ञान का स्वरूप है । ज्ञान रूपा सीता ही हमें पूर्णता तक पहुंचाती है। यदि राम परब्रह्म परमात्मा है तो सीता परम परमात्मा की अनुभूति और उसका पूर्ण ज्ञान है जो संसार से मुक्ति का हेतु है इसमें वर्णित सीता का चरित्र हमें राम विषयक ज्ञान की पूर्णता पर पहुंचाता है इसलिए जब सीता ने राम के पराक्रम को लघु बताया, तब ऋषि मुनि अचम्भित हुए परंतु राम निश्चल रहे, यदि राम का जन्म दशमुख रावण को मारने के लिए हुआ है तो सीता का जन्म सहस्त्र मुख रावण को मारने के लिए हुआ है, दशमुख रावण के वध में सीता ही निमित्त बनी और सहस्त्र मुख रावण के वध में राम निमित्त बनें। सीता हरण के प्रसंग में देखा जाए तो सीता को सामान्य अबला नारी का व्यक्तित्व दिया गया है जबकि सहस्रमुख रावण का वध करने में असमर्थ राम को सामान्य पुरुष का व्यक्तित्व मिला है। वास्तव में देखा जाए तो दोनों अभिन्न है, वह जो भी कुछ कार्य करते हैं तब ऐसा समझना चाहिए कि वह कार्य उन दोनों के सहयोग से ही पूर्ण हुआ है, दोनों अभिन्न है इसलिए वास्तव में साक्षात् परमात्मा भी धरती पर बिना शक्ति के अवतार नहीं ले सकता। अकेले शक्ति भी बिना आधार के प्रयुक्त नहीं हो सकती, अतः दोनों परस्पर अभिन्न है, एक है ।

७. **सातवीं शक्ति है "विवेक शक्ति"**- अनेक प्रसंग ऐसे हैं जहां सीता विवेकशक्ति के रूप में दिखाई देती है और जब उनका विवेक तत्व जागृत होता है तब वह अपने सुंदर दृष्टिकोण और विवेक से अपने जीवन में आने वाली सभी विपतियों और समस्यायों को बड़े धैर्य से सहन और उनका समाधान करती है ।

८. **आठवीं शक्ति है "विद्याशक्ति"**- सीता संसार की संपूर्ण विद्याओं का भण्डार है। उसे अद्‌भुत रामायण में ज्ञानशक्ति कहकर संबोधित किया गया है ।

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम्।
सर्वसामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मितः॥

९. **नवी शक्ति है "लोक शक्ति"**- संपूर्ण संसार की मां के रूप में लोक के ह्रदय में निवास करने वाली, यदि हम संपूर्ण दुनिया का भ्रमण करें, तो हम देखेंगे सभी राम मंदिरों में सीता और राम साथ में है तो सीता संपूर्ण लोक में समाहित है, सीता सम्पूर्ण सृष्टि में आदर्श पतिव्रता नारी की रूप सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोपरि स्थान प्राप्त करती है, सम्पूर्ण मानव जाति के ह्रदय में उनका आदरणीय स्थान है, वह लोक शक्ति से ही उत्पन्न भी हुई है लोकप्रिय से अर्थात् खेत से उत्पन्न होने वाली। अंततः आदर्श नारी के रूप में सीता का चरित्र एक असाधारण और अद्‌भुत आदर्श है, राम और सीता में स्पर्धा नहीं है, प्रेम, त्याग और बलिदान है, दोनों का स्वतंत्र व्यक्तित्व है, दोनों आपस में सहयोग और सौहार्द से जुड़े हैं दोनों निष्काम और कर्तव्य परायण है। अद्‌भुत रामायण में सीता का चरित्र राम जी के समान पूर्ण रूप से नारी जागरण के लिए व्यवहारिक है। आधुनिक युग की नारी अपनी ज्ञान, इच्छा और क्रिया शक्ति का वास्तविक परिचय देकर अपने आधुनिक स्वरूप को प्रस्तुत कर सकती है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर इस ग्रंथ में सीता के चरित्र को अद्‌भुत रूप में प्रकाशित किया गया है। आज की नारी को सीता के सामान रावण के नाश के लिए तैयार हो जाना चाहिए, अद्‌भुत रामायण में सीता महिमा का विशेष रूप से वर्णन मिलता है, इसे गुप्त कथा भी कहा गया है जो किसी अन्य रामायण में उपलब्ध नहीं है।

* * *

सृष्टि की आधार स्त्री

डॉ. प्रवीण बाला
सहायकाचार्या
भारती महाविद्यालय, दिल्लीविश्वविद्यालय

स्त्री शब्द मूलत: 'स्त्यै' धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ किसी भी जीव को पूर्णता प्रदान करना है। स्त्री के बिना कोई भी जीव न तो पूर्ण है न ही सृष्टि के निर्माण करने में समर्थ है अत: स्त्री सकल ब्रह्माण्ड की निर्मात्री कही गई है। सांख्य में स्त्री के प्रतीक के रूप में 'प्रकृति' को माना है जो सम्पूर्ण संसार का कारण मानी गई है –

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृति विकृताः सप्त।

'प्रकृति' संसार का निर्माण करने वाली कारण रूप है–'अजन्यत्वेसतिजनकत्वम्' अर्थात् जो कार्य नहीं अपितु कारण है। स्कन्दपुराण में प्रकृति को शिव की पत्नी कहा गया है

शिवस्य गृहमेधिनी गृहिणी प्रकृतिर्दिव्या प्रजाश्च महदादयः।

सनातन संस्कृति में शिव एवं पार्वती को संसार का कारण बताया गया है। शिव अव्यक्त है तो पार्वती प्रकृति रूपा व्यक्त हैं। जो संसार की प्रजा अर्थात् जीव को उत्पन्न करने वाली कही गईं हैं। वैदिक साहित्य में सम्पूर्ण संसार को अग्नि और सोमात्मक कहा गया है –

"अग्निषोमात्मकं विश्वम्"

यहाँ अग्नि पुरुष तथा सोम को स्त्री की संज्ञा दी गई है। सोम को संसार का निर्माण करने वाला कहा है। इसी प्रकार ऋग्वेद के वाक् सूक्त में अम्भृण ऋषि की पुत्री को आत्मज्ञान तब प्राप्त होता है, जब ब्रह्म साक्षात्कार सम्पन्न होकर सर्वात्म दृष्टि से कहती है "ब्रह्मरूपा मैं रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वदेव के रूप में विचरण करती हूँ, मैं ही ब्रह्म रूप से मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ, मैं ही इन्द्र और अग्नि का आधार हूँ। मैं ही दोनों अश्विनी कुमारों को भी धारण करती हूँ, पोषण करती हूँ।"

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरूत विश्वदेवैः।

(ऋ. 10/125/1)

इसी सूक्त में वह यह अभिव्यक्त करती हैं कि वे ही सम्पूर्ण जगत की ईश्वरी है और अपने उपासकों अभीष्ट धान प्रदान करने वाली हूँ, जिज्ञासुओं के साक्षात् कर्तव्य परब्रह्म को अपनी आत्मा के रूप में मैंने अनुभव कर लिया है। सम्पूर्ण प्रपञ्च के रूप में मैं ही अनेक रूप में विद्यमान हूँ, सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में जीवरूप में मैं अपने आपको प्रविष्ट कर रही हूँ, भिन्न-भिन्न देश काल, वस्तु और व्यक्तियों में जो कुछ हो रहा है, किया जा रहा है, वह सब मुझमें मेरे लिए ही किया जा रहा है। सम्पूर्ण विश्व के रूप में अवस्थित होने के कारण जो कोई जो कुछ भी करता है, वह सब मैं ही हूँ -

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकि तुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्र भूरिस्थात्रं भूर्यावेशयन्तीम् ॥

(ऋ. 10/125/3)

अर्थात् जगत के कण-कण में स्त्री शक्ति ही विद्यमान है, प्राणी जो कुछ देखता है, सुनता है, श्वास लेता है, जो कुछ व्यापार करता है वह सब स्त्री अर्थात् मेरे कारण ही है -

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः
प्राणिति य ई शृणोत्युक्तम् ॥ (ऋ. 10/125/4)

ब्रह्मरूपा वाक्शक्ति कहती है मैं जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ उसकी रक्षा करती हूँ, जिसे चाहती हूँ उसे सर्वश्रेष्ठ बनाती हूँ, मैं चाहूँ तो मैं ब्रह्मा बना सकती हूँ, मैं ही द्युलोक और पृथिवी में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हूँ -

अहं रुद्राय धानुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शखे हन्तवाउ द्यावा पृथिवी आ विवेश।

इसी प्रकार केनोपनिषद् (के.उ. 3/12) में 'उमाहेमवती' को ब्रह्मविद्या कहकर सम्बोधित किया गया है, जिनकी उत्पत्ति इन्द्र, अग्नि तथा वायु आदि देवों को उपदेश देने के लिए हुई थी।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् में माया को प्रकृति कहा गया है, जो सम्पूर्ण संसार का सृजन करने वाली परमात्मा की शक्ति कही गई है। सृष्टि में सारे जीव माया द्वारा ही आबद्ध रहते हैं -

अस्मान मायी सृजते विश्वमेतत्
तस्मिश्चान्यो मायया सन्निद्धाः॥ (४/९)

विष्णुपुराण में लक्ष्मी को सकल संसार में व्याप्त रहने वाली नारायण की शक्ति के रूप में व्यक्त किया गया है जिस प्रकार विष्णु सर्वगत हैं उसी प्रकार लक्ष्मी भी सर्वगत तथा संसार में विभिन्न कार्यों का सम्पादन करने के कारण विविध नामों से जानी जाती हैं जैसे-प्राणियों में विद्यमान

रहने के कारण बुद्धि वाणी, सत्क्रिया, भूमि, तुष्टि, दक्षिणा, आहूति, इध्या, चिति, स्वाहा, प्रभा, पद्या, स्वधा, कान्ति आदि। शिवपुराण में पार्वती एवं शिव का दार्शनिक संवाद कुछ इस प्रकार मिलता है पार्वती अपनी तपस्या भूत शिव की सेवा करना चाहती हैं, इस पर शिव उन्हें अपनी सेवा करने से मना कर देते हैं और राजा हिमालय से कहते हैं आपकी कन्या अविवाहित है विशेषकर युवति तपस्वियों के तप में विघ्न डालने वाली होती हैं। शिव के इन वचनों का उत्तर देते हुए पार्वती कहती हैं कि हे प्रभु! आप तप शक्ति से सम्पन्न होकर ही तय करते हैं इस शक्ति के कारण ही आप जैसे महात्मा को तप करने का विचार आता है, प्रकृति के बिना लिङ्ग माहेश्वर कैसे हो सकते हैं। सभी कर्मों को करने वाली प्रकृति है प्रकृति ही सबका सृजन, पालन एवं संहार करने वाली है, प्रकृति के कारण ही वाणी का व्यापार है, आप सभी जो सुनते हैं, बोलते हैं, खाते हैं वे सभी प्रकृति के कार्य हैं। वे कहती हैं मैं ही प्रकृति हूँ। (शिवपुराण, 13वां अध्याय)

प्रकृति रूपी मैं स्त्री सकल ब्रह्माण्ड को संचालित करने वाली तथा संवर्धन करने वाली हूँ, समस्त क्रियाओं की आधार स्वरूप स्त्री पवित्रता, कोमलता, शीतलता की मूर्ति है। कल्पवृक्ष के समान संसार को सबकुछ देने वाली मातृरूपा स्त्री को देवता कहा गया है। इस भाव की अभिव्यक्ति तैत्तिरीयोपनिषद् में मिलती है, जहाँ माता को देवता कहा गया है –

"मातृदेवो भव"

मानव जाति पर जब-जब संकट की स्थिति आती है, इन विपरीत परिस्थितियों में मानव के मुख से परमसत्ता का आह्वान माँ के रूप में ही किया जाता है –

"त्वमेवमाता पिता त्वमेव"

अतः स्त्री से ही संसार को पूर्णता प्राप्त होती है बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है –

अयमाकाशः स्त्रियाः पूर्यते। (बृ.उ. 1.4.3)

स्त्री संसार की सृजनकर्त्री होने के कारण वेद में एक स्थान पर उसे ब्रह्मा कहा गया है–

"स्त्री हि ब्रह्मा बभूविधा।"

एक अन्य स्थान पर स्त्री को सरस्वती कहा गया है जो ज्ञान के अमृत से सबको आच्छादित करती है –

"त्वे विश्वा सरस्वती" (ऋ. 2.41.17)

अर्थात् हे ज्ञान की देवी! तुझ पर ही जीवन आश्रित है तू ही सरस्वती रूपा है। यजुर्वेद में स्त्री के लिए अत्यन्त रमणीय वक्तव्य मिलता है जहाँ कहा गया है कि स्त्री पूजनीय है, चन्द्रमा के समान आह्लादित करने वाली, श्रेष्ठ गुणों की प्रकाशिका तथा तीनों कालों का संरक्षण करने वाली है –

इडेरन्ते हव्ये काम्ये चन्द्र ज्योति अदिते सरस्वती मही विश्रुति।
एताते अघन्ये नामानि देवेभ्यो या सुक्रतं ब्रूतात ॥ (यजु. 8/43)

अर्थात् स्त्री अघन्या है यह हिंसा की पात्र नहीं अपितु सम्माननीय तथा पूजनीय है।

स्वामी दीक्षानंद सरस्वती ने स्त्री के पक्ष में अपने विचार कुछ इस प्रकार कहे हैं–स्त्री तीनों कालों की संरक्षिका है, भूत, वर्तमान एवं भविष्य में रहने वाली विविध प्रकार से स्त्री का यशोगान करना चाहिए –

यस्यां भूतं समभवत् यस्यां विश्वं इदं जगत।
तामद्य गाथां गास्यामि स्त्रीणां यदुत्तमं यशः॥

"वैदिक संहिता में नारी"

स्मृति ग्रन्थों में भी स्त्री की महत्ता को समझते हुए कहा है कि स्त्री संतान को जन्म देने वाली है, भाग्यवान है, स्त्री पूजा के योग्य है, लक्ष्मी है, स्त्री से ही घर है स्त्री के बिना घर घर नहीं है।

प्रजनार्थ महाभागः पूजार्घगृहदीप्त्यः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्तिकश्चन॥

महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह कहते हैं कि स्त्री सदा सम्मान के योग्य है, जिन घरों में स्त्री का अपमान होता है। वे घर श्रापित हो जाते हैं तथा उस घर के समस्त कार्य असफल हो जाते हैं किन्तु इसके विपरीत जिन घरों में स्त्री का सम्मान होता है। उन घरों में देवताओं का वास होता है तथा किया गया हर कार्य सफल होता है –

पूज्या लालायितव्याश्च स्त्रियो नित्यं जनाधियः।
स्त्रियो यत्र हि पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः॥ ४/५॥
अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्रफला क्रियाः।
तदा चैतत्कुलम् नास्ति यदा शोचन्ति वामयः॥ ४/६॥

अर्थात् हे राजन्। स्त्रियों का जहाँ सम्मान होता है वहाँ दिव्य संतान जन्म लेती है।

मनु ने भी स्त्री के विषय में यही कहा है स्त्री संतान को जन्म देने वाली, धर्म को दिखाने वाली, स्त्री के अधीन ही स्वर्ग तथा पितृलोक है –

अपत्यं धर्म कार्याणि, शुश्रुषारिंतिस्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मानश्चः॥ (मनु.10/28)

महाभारत में स्त्री को धर्म का मूल कहा गया है –

“स्त्री प्रत्ययो हि वै धर्मो:” (महा. अनु. 04/10)

स्त्री ही संतान को जन्म देने वाली, उत्पन्न हुए बालक का लालन एवं पालन करने वाली, लोक यात्रा का प्रसन्नतापूर्वक निर्वाह करने वाली कही गई है–

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रीत्यर्थे लोक यात्राया: पश्यत स्त्री निबन्धनम् । (महा. अनु. 04/1)

यदि मानव जाति स्त्री का सम्मान करती है तो उसके सभी कार्य सिद्ध होते हैं–

सम्मान्ययाश्चैता हि सर्व कार्याव्यवारप्यथं ॥४/१२॥

वराहमिहिर ने बृहदसंहिता के स्त्री प्रशंसा अध्याय में स्त्री को स्वयं में एक रत्न बताया है और कहा है स्त्री से रत्नों की कीमत बढ़ती है न कि रत्नों से स्त्री की कीमत बढ़ती है –

रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्य।

(बृ.सं. 74/2)

उन्होंने कहा है कि संसार में ब्रह्मा ने स्त्री के अतिरिक्त कोई ऐसा रत्न नहीं बनाया है जिसको सुनकर, देखकर आनन्द की अनुभूति हो, स्त्री ही एकमात्र ऐसा रत्न है जिसका स्मरण भी आह्लाद को उत्पन्न करने वाला है –

“न रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत कचिदपि कृतं लोकपतिना ॥७४/४॥

उनके अनुसार संसार में स्त्री के समान कोई वस्तु पवित्र नहीं है जितनी स्त्री पवित्र है –

स्त्रियः पवित्रमतुलंनैतादुष्यन्ति कर्हिचित ॥७४/९॥

जिन घरों में स्त्रियाँ अपमानित होती हैं वे घर शापित होकर चारों तरफ से नष्ट हो जाते हैं –

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिमापूजिता:।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥७४/१०॥

अथर्ववेद में स्त्री को पृथिवी रूप मानकर कहा गया है कि सत्यं, ऋत, दीक्षा, उग्र तप ब्रह्म तथा यज्ञ को पृथिवी धारण करने वाली है –

सत्यं बृहद ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्युरुं लोकं पृथिवीः नः कृणोतु ॥१२/१॥

अर्थात् तीनों कालों में वर्तमान रहने वाली है। पृथ्वी वात्सल्य की मूर्ति, धन, यश, समृद्धि प्रदान करने वाली है। पृथिवी के मानव जाति के प्रति वात्सल्य का अनुभव कर, ऋषि ने पहली बार पृथिवी को माता और स्वयं को पुत्र कहा है –

"माताभूमि पुत्रेहं पृथिव्या"

अतः उक्त प्रमाणों से विदित होता है कि मानव की समस्त क्रियायें प्रकृतिमय हैं, प्रकृति ही स्त्री है। अतः मानव को जन्म देने वाली, संरक्षण करने वाली, संवर्धन करने वाली नियमित एवं नियन्त्रित करने वाली मातृरूपा स्त्री संसार के कण–कण में व्याप्त, समस्त सृष्टि की आधार रूप है, इसीलिए कहा गया है –

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

* * *

स्त्री संचेतनाः रामायण के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. कल्पना शर्मा
सहायकाचार्या
माता सुंदरी महाविद्यालय, नई दिल्ली

संचेतना शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक चित् धातु से असुन् करके निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ चेतना, ज्ञान, चिंतनशील आत्मा, तर्कना शक्ति, मन, हृदय, प्रतिबोध, प्रज्ञा, जीवन, प्राण, सचेत, जीवित, विचार-विमर्श एवं बुद्धिमत्ता को लिए हुए है।

मानव जीवन का केन्द्र बिन्दु 'स्त्री' है। सृष्टि में आकर प्राणी का प्रथम दर्शन नारी ही होती है। स्त्री का स्पर्श पाकर नवागन्तुक आत्मीयता अनुभव करता है। सृष्टि के मूल में यदि कुछ है तो स्त्री है। अपने वात्सल्य, अपनी कमनीयता, सहृदयता, सौम्यता आदि अनेक रूपों से स्त्री समाज को कृतार्थ करती रही है। सहज स्वभाव से युक्त नारी समाज का दिशा निर्देश भी करती है। अपने ज्ञान, विवेक, धैर्य का समावेश कर वह अपनी संचेतना से भविष्य को पहचान कर दूरदर्शिता का परिचय भी देती है। संकट को निकट आने से पूर्व ही उसे भांप लेती है तथा अमंगल का निवारण कर देती है।

स्त्री संचेतना स्त्री से जुड़ा एक अहसास है। भारतीय स्त्री प्रतिक्षण सचेत ही रही है एवं अपने क्षमता सम्पन्न अस्तित्व को प्रमाणित भी करती रही है। वैदिक काल से ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री को प्रकृति की श्रेष्ठतम रचना भी माना गया है। शिव और शक्ति को समान रूप से पूजा ही नहीं अपितु शक्ति के बिना शिव को अपूर्ण माना गया है। स्त्री को प्राण जैसे संबोधन दिए गए। स्त्री संचेतना, स्त्री स्वातंत्र्य तथा स्त्री सशक्तिकरण के सूत्र, संकेत यत्र यत्र वेदों में वर्णित हैं परन्तु स्त्री संचेतना का प्रायोगिक रूप मिलता है ऋग्वेद के वाक् सूक्त में (१०.२५)। सूक्त में केवल ८ मंत्र हैं। इसमें वाणी ने अपने विषय में स्वयं कहा है -

अहं रुद्रेभिरवसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोमा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा। (१०.२५.१)

वाक् सर्वदेवात्मिका है। लोकों की समुत्पादिका है। समाजोत्पीडकों की संहारिका है। लोकोपकारिका है। सांसारिक उपलब्धियों की उत्पादिका है। स्त्री का इस प्रकार का चित्रण अन्यत्र मिलना असंभव ही है।

मानव मूल्यों का सर्वोच्च आदर्श 'रामायण' को माना गया है। रामायण काव्य में स्त्री पात्र का चिन्तन करें तो सर्वप्रथम 'सीता' ही मस्तिष्क में आतीं हैं। सीता भारत की वे स्त्री हैं जिनके विषय में कोई ऐसा नहीं जो इनसे अनभिज्ञ हो। आदर्श नारी, आदर्श की प्रतिमूर्ति सीता अपने स्वतंत्र, विवेक सम्मत विचारों से अवगत करवाती है। प्रसंग है 'राम को वन गमन का आदेश मिलना'। राजधर्मों को जानने सीता राज्यभिषेक के अनुकूल आचरण न देखकर राम से प्रश्न करती है आपके मुख पर प्रसन्नता का कोई चिह्न नहीं है इसका कारण क्या है? सीता का यह प्रश्न मन को पढ़ लेने वाले मनोचिकित्सक से कमतर नहीं है। श्रीराम के राज्याभिषेक का निर्धारण होते ही पूर्व रात्रि में सीता ने सभी आवश्यक एवं माङगलिक क्रियाएं सम्पन्न कहीं। भगवान् नारायण की उपासना तथा ध्यान करते हुए वहीं कुश की चटाई पर शयन किया। (2.6.1-4)भावज्ञातृ सीता क्षण भर भी न रुके अपने कथन को आगे बढ़ाती है।-

आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वयं भाग्यमुपासते॥
भर्तुभाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चौववाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि
ईर्ष्या शेषं बहिष्कृत भुक्तशेषमिवोदयम्।
नया मां वीर विस्रब्धः पापं मयि न विद्यते॥

सीता अपने अधिकार एवं कर्तव्य के मर्म को जानती है। निर्भयता से राम के सम्मुख प्रश्न करती है-मैं आपकी धर्मपत्नी हूं। उत्तम व्रत का पालन करने वाली और पतिव्रता हूं। फिर क्या कारण है कि आप मुझे यहां से साथ ले चलना नहीं चाहते हैं।

एवस्मात् स्व कां वालीं सुव्रत्तां हि पतिव्रताम्।
नाभिरोचयसे नेतुं त्वं मां केनेह हेतु ना। (अ०का०-29.1.9)

सीता के इस कथन से यह ध्वनि निकलती है कि पत्नी से अपेक्षित सभी गुणों का वह वहन करती है फिर उसे छोड़ कर जाने का क्या कारण है? सीता के वन गमन के निश्चय को बदलने के लिए राम ने उन्हें वन के कष्टों, असुविधाओं एवं दुःखंदारी कर्तव्यों को विस्तार से विवेचन किया। (अ०का०2.28)। परन्तु सीता ने वाक्-चातुर्य से राम को को कथन से ही मौन कर दिया। उसने कहा आप स्वयं कहा चुके हैं कि पतिव्रता स्त्री पति से वियुक्त होकर जीवित नहीं रह सकती। (अ०का०2.29.7)। इस आधार पर सीता को रामायण का एक अबोध, शान्त एवं निरीह पात्र भी कहा जाता है। यथार्थता यह है किवह ओजस्विनी पत्नी थीं अपने तर्कपूर्ण आग्रह से वह पति से अपनी बात मनवाने की क्षमता रखती थी। वह कर्तव्य-निष्ठा में दृढ़ थी परन्तु दया की भिक्षा नहीं मांगने वाली थी। उसने अपनी कर्तव्यपरायणता से राम के हृदय में स्थान बनाया था।

सीता ने राम द्वारा जनापवाद के कारण दिए गए निर्वासन को सहजता से स्वीकार कर लिया। गर्भावस्था में भी पत्नी का त्याग करने में संकोच न करने वाले राम के प्रति कोई दुर्भाव नहीं रखा। जन-समुदाय द्वारा लगाए गए कलंक पर दुखी होकर भी वह उनके प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखती। जन-समुदाय परिवारजन, गुरु, ऋषियों के समक्ष जब सीता से लव-कुश से सम्बद्ध प्रमाण मांगा गया तो उसका स्वाभिमान जाग्रत हो गया। उसे अपने सतीत्व की परीक्षा देने से अधिक उचित लगा कि वह धरती मां से उसके अङ्क में में स्थान मांग ले। यहां यह उल्लेखनीय है कि महाभारत में द्रौपदी चीरहरण का प्रसंग। द्रौपदी पतियों के समक्ष ही गोविन्द को सहायता के लिए पुकारती है और सीता स्वाभिमानिनी किसी देवी-देवताओं से कोई अपेक्षा न रखते हुए पृथ्वी की गोद में जाती है-

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये......(उ०का०-97.14-19)

स्त्री संचेतना का अद्वितीय उदाहरण 'तारा' है। तारा वरुण -पुत्र सुषेण की पुत्री थीं। संदर्भ है बाली को युद्ध के लिए ललकारना। इन्द्र-पुत्र बाली इनके पति थे। तारा एक पतिव्रता स्त्री थी जिस समय तक वह बाली की पत्नी थीं, बाली को अनन्य हृदय से प्रेम करती रही। उसी के हित में संलग्न रहती थी। सदैव उसे सद्प्रेरणा देती थी। सुग्रीव जो बाली से पराजित एवं विशेष पीड़ित है जब वे बाली को उत्तेजित करता है तारा कहती है कि सुग्रीव किसी सफल सहायक को लेकर आते हैं जिसके बल पर वे गरज रहे हैं। (कि० का०- 4.22.13)

अष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति। (कि ०का० 4.15)

सामदानदण्डभेद चतुर्विधा उपायों की ज्ञातृ बाली को सलाह देती है कि दान-मानादि से उसको अन्तरङ्ग बना लीजिए।

दानमिनादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम्। (क० रा०16.27)।

उसे ज्ञात है कि अमित तेजस्वी श्रीराम के साथ सुग्रीव की मैत्री स्थापित हो चुकी है।(16.17)।

कान्तासम्मित उपदेश शैली में बाली को कर्तव्याकर्तव्य का बोध करवाती है। तारा सुविज्ञ, दूरददर्शिणी एवं नीति कुशलता है। उसके परामर्श को न मानकर बाली ने स्वयं की हानि की है। मृत्यु से पूर्व बाली सुग्रीव से स्वयं कहता है-

सुषेणदुहिता चेयमर्थ सूक्ष्मविनिश्चये ।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥
यदेषा साध्विति ब्रूयात् कार्यों तन्मुक्तसंशयम् ।
नहि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते ॥ (कि० का० 22.13-14)

तारा की सम्मति का परिणाम कभी विपरीत नहीं होता है। सुग्रीव को भी तारा की वाक् चातुरी एवं बुद्धिमत्ता पर पूर्ण विश्वास था। क्रुद्ध लक्ष्मण के समक्ष वह तारा को ही उनका क्रोध शांत करने के लिए भेजते हैं। तारा भी नीतिरीतियुक्त वचन से सुग्रीव की स्थिति एवं लक्ष्मण के आवेश के मध्य में स्थापित कर देती है कि वे दोनों ही यथास्थान उचित हैं और क्रोध एवं काम के वशीभूत हैं।

न कामतन्त्रे तव बुद्धिरस्ति
त्वं वै यथा मन्युवशं प्रपन्नः
न देशकालौ हि यथार्थधर्मा-
ववेक्षते कामरतिर्मनुष्यः। (33.33-35)।

सुग्रीव की असावधानी से दुष्ट लक्ष्मण को प्रसन्न कर पति के प्राण एवं राज्य की रक्षा दोनों उद्देश्य पूर्ण कर लेती है। तारा की संचेतना पहले बाली और बाद में सुग्रीव के प्रति हस्तांतरित हो जाती है।

रावण की पटरानी मन्दोदरी एक नीति निपुणता, वाक्पटु एवं पतिव्रता स्त्री थी। यह असुर मय तथा अप्सरा हेमा की पुत्री थी। सदैव पति के हित में संलग्न मन्दोदरी रावण को कर्तव्याकर्तव्य के प्रति सचेष्ट करती थी। परस्त्री को उठा लाने वाले रावण को नारीचौर्य सदृश निंदनीय कृत्य के लिए वह धिक्कारी है। तीनों लोकों को अपने तेज से आक्रांत करने वाले आपने प्यारी स्त्री को चुराने का नीच काम कैसे किया। मायामृग के बहाने श्री राम को आश्रम से दूर हटाया और लक्ष्मण को अलग किया। उसके बाद सीता को चुराकर यहां ले आए यह कितनी बड़ी कायरता है। (यु०का०-111.67-68)

तदेवं प्रस्तुते कार्येप्रायशश्चित्तमिदं क्षमम्।
रोते वीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम्। (यु० का० 10.22)

सीता के व्यवहार से असंतुष्ट रावण जब उसे मारना चाहता है तब मन्दोदरी उसे अनुचित एवं नियम विरुद्ध कार्य करने से रोकती है। इस स्थल पर उसकी वाक् पटुता प्रशंसनीय है। 'सीता से तुम्हें क्या काम है?' आज मेरे साथ रमण करो। जनकनंदिनी मुझसे अधिक सुंदर नहीं है। देवता एवं यक्षों की कन्याएं हैं। इनके साथ रमण कीजिए। सीता को लेकर क्या करोगे ? (सु० का० 58.74-79।

उसकी अन्तर्चेतना परिस्थिति की गंभीरता को जान लेती है। दूरदृष्टि रखने वाली वह परिण ाम को स्पष्ट देखने वाली है। श्रीराम की शक्तियां को पहचान कर, पति के प्राण को सुरक्षित रखने की कामना से रावण को प्रेरणा देती है कि वह सीता को श्रीराम को समर्पित कर दें। श्रीराम से

मैत्री स्थापित कर लें जिस लंका में देवताओं का भी प्रवेश कठिन था। वहां हनुमान् जी घुस आए। उसी समय हम भावी अनिष्ट की आशंका से व्यथित हो उठी थी (यु०का०111.19) मन्दोदरी यथा सामर्थ्य रावण के हित साधन करने के लिए तत्पर रहती थी।

तपस्विनी स्वयंप्रभा रामायण की एक अनुपम स्त्री पात्र हस्व संचेतना से हनुमान् एवं अन्य वानरों को अपने अलौकिक वन में पाकर वह अपने योगफल से ये ज्ञात कर लेती है कि ये सब एक सद्प्रयोजन से यहां एकत्र हुए हैं। उनकी भोजन-जल से आतिथ्य कर वह उन्हें लंका के तट पर पहुंचा देती है।

लंकिनी, त्रिजटा, कौशल्या आदि भी ऐसे ही स्त्री पात्र हैं जिन्होंने अपनी चेतना से रामायण को नवीन एवं सार्थक दिशा दी है। तथ्य यह भी निकलता उस प्रकार की संचेतना न केवल मानवीय अपितु वानर, राक्षस सभी तरह की स्त्री पात्रों में पाई जाती है। हम संचेतना शब्द से जिस निष्पत्ति को लेकर चले थे उसके सम्यक् अभिप्राय पर रामायणीय स्त्री पात्र पूर्ण करते हैं।

सन्दर्भग्रन्थः-

१. रामायण, महर्षि वाल्मीकि, गीता प्रेस गोरखपुर, 1983

२. नारी-अङ्क- गोविन्द भवन-कार्यालय, गीता प्रेस गोरखपुर।

३. आप्टे वामन शब्दकोश।

* * *

वैदिक काल में नारी की बौद्धिक क्षमता

डा. नीलम गौड़
सहायकाचार्या
आत्माराम सनातनधर्म महाविद्यालय, नई दिल्ली

वेद अथाह ज्ञान के भण्डार हैं। कर्म, ज्ञान, उपासना तथा मानव जाति के कल्याण की समग्र विचारधारा वेदों में समाहित है। वेदों में अभिव्यक्त ऋषि-मुनियों का चिन्तन नर और नारी दोनों के लिए यद्यपि समान रूप से हुआ है तथापि नारी के सशक्त स्वरूप को प्रकट करने वाले अनेक उदाहरण वैदिक साहित्य में मिलते हैं। वैचारिक स्वतन्त्रता सामान्यतः व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता को बताती है। वैदिक काल में नारी के सशक्त और सक्षम व्यक्तित्व का कारण उसकी बौद्धिक सम्पदा ही रही है। यजुर्वेद में एक स्थान पर अनेक गरिमायुक्त विशेषणों से सम्बोधित करते हुए नारी को उपदेश करने को कहा गया-

इडे रते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता तेऽघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥[१]

अर्थात् हे स्त्री! तू स्तुति योग्य उत्तम वाणी युक्ता, रमणीया, पूजनीया, कमनीया, चन्द्र के समान आह्लादकारिणी, ज्योति के समान अज्ञान रूपी अन्धकार को अपने दिव्य गुणों के प्रकाश से दूर करने वाली, दीनता और हीनता के भावों से रहित परम्परा से पूर्ण, विविध गुणों से प्रसिद्ध अथवा विविध विद्याओं का जिसने श्रवण किया हुआ है तथा विविध विद्याओं में निपुण ये तेरे ही नाम हैं। तू उत्तम गुणों के लिए मुझे उपदेश कर। नारी के लिए अघ्न्या तथा महि शब्दों का प्रयोग क्रमशः ताड़ना न करने योग्य तथा अत्यन्त पूजनीया अर्थों में किया गया है।

नारी और वेद की चर्चा में पारस्करगृह्यसूत्र का उद्धरण स्मरण आता है जहां कहा गया है कि पाणिग्रहण के बाद लाजाहोम में कन्या अपने लिए अपने मुख से नारी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करती है-पारस्कर गृह्यसूत्र[२], अथर्ववेद[३]। नारीत्व प्राप्त करते ही वह दो प्रधान आदर्श अपने जीवन के लिए रखती है-आयुष्मानस्तु मे पतिः, एधन्तां ज्ञातयो मम अर्थात् मेरा पति पूर्ण आयु सम्पन्न हो और मेरी जाति की अभिवृद्धि हो। नारी होने के बाद ही वह सौभाग्य को प्राप्त करती है- पा.गृ.[४], अथर्व.[५]। इस प्रकार के ये आदर्श परमार्थ सार को व्यक्त करते हुए नारी की समृद्ध विचारशक्ति को बताते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक साहित्य में प्रयुक्त स्त्रीत्व बोधक कुछ शब्दविशेषों- नारी,

नारि, मेना, जाया, स्त्री, सूनरी, पुरन्ध्रि, पत्नी आदि के माध्यम से नारी के स्वरूप का तथा वैदिक ऋषिकाओं के माध्यम से नारी शिक्षा की स्थिति का और वैदिक साहित्य में उपलब्ध संवादों व आख्यानों के माध्यम से वैदिक नारी की वैचारिक स्वतन्त्रता का अध्ययन किया गया है।

१. वैदिक साहित्य में प्रयुक्त स्त्रीत्व बोधक शब्द-

नारी-नृ धातु से उत्पन्न नर और नारी शब्द ऋग्वेद के सप्तम अष्टम तथा दशम मण्डल के मन्त्रों में प्रयुक्त है। यह वीरता का कार्य करने, दान देने एवं नेतृत्व करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

वृषा जजान वृषणं रणय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव[६]।
सहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वावगच्छति,
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीपते विश्वस्मदिन्द्र उत्तरः।[७]

अर्थात् नारी सत्य की विधात्री व वीरमाता इन्द्रपत्नी यज्ञ या युद्ध के समय वहां जाती है एवं सबका आदर पाती है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीरांजनेन सर्पिषा सं विशन्तु।[८]

नारि शब्द का प्रयोग कहीं कहीं ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकग्रन्थों तथा अथर्ववेद में मिलता है। सायण के मत से नारि का भाव नरों का उपकारक अथवा शत्रु न होना है।

नृणां महावीरार्थिनाम् उपकारित्वात् नारिः। न अरिः नारिः।[९]

मेना - ऋग्वेद में मेना शब्द स्त्री के लिए अनेक मन्त्रों में प्रयुक्त हुआ है। महर्षि यास्क ने इसकी व्युत्पत्ति की है- **मानयन्ति एनाः।**[१०] पुरुष इनका सम्मान करते हैं अतः इन्हें मेना कहा जाता है। बाद में मेना शब्द ही माना होकर मान्या बन गया। ऋग्वेद के प्रथम और द्वितीय मण्डल के मन्त्रों में मेना शब्द का प्रयोग हुआ है।

द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः।[११]
उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवांजन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः।[१२]
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरया सचेथे मेने इव तनवा३
शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु।[१३]

जाया- जाया शब्द पत्नी सम्बन्ध का बोधक है। ऐतरेय ब्राह्मण में जाया शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है-तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः। ऋग्वेद में जाया शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है-

कल्याणी जाया सुरणं गृहे ते।[१४]
जायेदस्तं मघवन् सेदुयोनिः।[१५]

जाया शब्द स्त्री के सम्मानित स्वरूप का बोधक है। सम्मानित वही होता है जो बौद्धिक क्षमता से युक्त हो।

स्त्री– सर्वाधिक प्रयुक्त यह शब्द वर्तमान में भारत की सभी भाषाओं में सुरक्षित है। स्त्री शब्द स्त्यै धातु से बना है। यास्क के मतानुसार स्त्यै का अर्थ लज्जा से सिकुड़ना है **स्त्रियः स्त्यायतेः अपत्रपणकर्मः।**[१६] आचार्य पाणिनि के धातुपाठ में स्त्यै का अर्थ लजाना नहीं मिलता, धातुपाठ के अनुसार **स्त्यै शब्दसंघातयोः।**[१७] अर्थात् शब्द करना तथा इकट्ठा करना। महर्षि पतंजलि ने स्त्रियाम् सूत्र के भाष्य में स्त्री शब्द पर एक स्थान पर व्युत्पत्ति दी हैं–शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानां गुणानां स्त्यानं। इस पर टिप्पणी देते हुए कहा गया है–

स्त्रियः एव एताः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धहारिण्यः।[१८]

अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध इन सबका समुच्चय ही स्त्री है। प्राचीन आचार्यों ने शब्द स्पर्श के संघात में स्त्रीत्व के दर्शन किए और साधु सन्यासियों ने विषयों से दूर रहने को स्त्री से दूर रहने का पर्याय ही मान लिया। स्त्री की मानसिक शक्ति को वैदिक ऋषि भी नमन करते हुए कहते हैं– स्त्रिया अशास्यं मनः अर्थात् स्त्रियों के मन पर अधिकार करना असाध्य है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है–

अयमाकाशः स्त्रियाः पूर्यते।[१९]

अर्थात् सृष्टि की सम्पूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री से ही होती है।

सूनरी– सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोति चित्तम्। सूनरी शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में उषा देवी के लिए किया गया है– जिसका अर्थ है–शोभा बढ़ाने वाली, सुन्दरी। **आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुंजती।**[२०]

पुरन्ध्रि– स्वजनसहितं पुरं धारयतिति पुरन्ध्रि। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त में पुरन्ध्रि शब्द का प्रयोग मिलता है। अग्निर्नारीं वीरकुक्षीं पुरन्ध्रिम्–ऋग्वेद।

सरस्वती– वैदिक साहित्य में यह शब्द विदुषी नारी अर्थ में अनेक स्थानों पर हुआ है यथा यजुर्वेद में –

पावकाः नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती यज्ञं वष्टु धियावसुः।[२१]

अर्थात् सरस्वती देवी पवित्र हैं अन्न द्वारा शक्तिशाली कार्य करने वाली हैं वे यज्ञ को धारण करें धन और वृद्धि बरसाएं। सरस्वती शब्द पर यजुर्वेद भाष्य में उक्त है–बहुविधं सरो

वेदादिशास्त्रविज्ञानं विद्यते यस्या: तां विज्ञानयुक्ताम् अध्यापिकां स्त्रियम्। यजुर्वेद में ही सरस्वती शब्द का अनेकश: व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

चोदयित्री सुनृताना चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती..........[२२]

अर्थात् सरस्वती देवी सत्य वचन और सत्य मार्ग की प्रेरणादायिनी हैं, सुमतियों को चेताने वाली हैं। सरस्वती देवी यज्ञको धारण करें।

महो ऊर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुंना, धियो विश्वा वि राजति।[२३]

अर्थात् सरस्वती देवी सबकी बुद्धियों को विशेष रूप से प्रकाशित करती है सरस्वती देवी महान् और ज्ञान का समुद्र है वे ज्ञान की पताका फहराती है। ऋग्वेद में **अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति, अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।**[२४] कहकर सरस्वती को माताओं नदियों और देवियों में उत्तम बताकर उनसे धनरहितों को धनी बनाने की प्रार्थना की गई है।

सुलाभिका– यह शब्द इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी के लिए उत्तम लाभ अर्थात् ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाली अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवांग भविष्यति।[२५]

चतुष्कपदा– ऋग्वेद के दशम मण्डल के 114 वें सूक्त के मन्त्र में यह शब्द यज्ञवेदी रूपी युवति के लिए प्रयुक्त हुआ है। चारों कोनों वाली वेदी रूपी युवती शोभन अलंकारों वाली, घी से चिकनी एवं स्तोत्रों को धारण करने वाली है।

चतुष्कपदा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते।[२६]

सम्राज्ञी– गृह में महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण समस्त परिवारजनों में उसे सम्राज्ञी पद से अलंकृत किया गया है।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।[२७]

अर्थात् हे वधू! तुम अपने सास, ससुर, ननद और देवर के प्रति सम्राज्ञी बनो।

उपनीता– उपनीता का अर्थ है जिसका यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार हो चुका है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 109 वें सूक्त के मन्त्र में उपनीता शब्द शुद्ध चरित्र वाली नारी के लिए प्रयुक्त हुआ है–

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्।।[२८]

अथर्ववेद में उपनयन संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी द्वारा धारण की जाने वाली मेखला के महत्व को बताते हुए कहा है-

श्रद्धाया दुहिता तपसो अधिजाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च।।[२९]

इसके आधार पर ही व्याख्या करते हुए कहा गया है कि उपनीता नारी मेखला की शक्ति के कारण इतनी सबल हो जाती थी कि वह अत्यन्त दुष्ट और दुराचारी पति को भी सन्मार्ग पर ले आती थी। वैदिक साहित्य में उपनीता नारी दो प्रकार की कही जाती थी- **ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाहा।** जो वेदाध्ययन में ही अपना जीवन समर्पित कर देती थी उसे ब्रह्मवादिनी तथा जो उपनयन के पश्चात् ब्रह्मचर्य आश्रम पूर्ण कर गुरु की आज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती थी वह सद्योद्वाहा कहलाती थी।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में उपलब्ध अनेक शब्द नारी के सशक्त स्वरूप को प्रकट करते हैं जिसका आधार उसकी वैचारिक स्वतन्त्रता है।

२. ब्रह्मवादिनी तथा वैदिक ऋषिकाओं के माध्यम से नारी शिक्षा की उच्च स्थिति-

ब्रह्मवादिनी तथा वैदिक ऋषिकाओं के माध्यम से वैदिक काल में नारी शिक्षा व्यवस्था का ज्ञान होता है। शौनककृत बृहद्देवता ग्रन्थ में 27 मन्त्रदृष्ट्री ऋषिकाओं अथवा ब्रह्मवादिनियों; घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, इन्द्राणी, लोपामुद्रा, श्रद्धा, शाश्वती आदिद्ध का उल्लेख मिलता है।[३०] वैदिक नारी की वैचारिक स्वतन्त्रता के मूल में तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में सभी के लिए समान रूप से शिक्षा का अधिकार ही था। शिक्षण संस्थाओं में समान रूप से बालक बालिकाओं को प्रवेश दिया जाता था। अथर्ववेद के अनुसार ज्ञानार्जन हेतु गुरुकुलों में बालिकाओं के ब्रह्मचर्य का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता हैं -

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।[३१]

बृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लेख मिलता है कि माता पिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी पुत्री पण्डिता अथवा ब्रह्मवादिनी बनें-

अथ च इच्छेद् दुहिता मे पंडिता जायेत..........।[३२]

उत्तम राष्ट्र की कामना करते हुए भी यजुर्वेद में कहा गया कि वैश्वदेवी अर्थात् उत्तम विदुषी देवियां हमें पवित्र बनाएं शुद्ध करें दुर्गुणों को दूर करें ये हमें दिव्यता प्रदान करने की कृपा करें।

वैश्वदेवी पुनती ....वयं स्याम पतयो रणीयाम्।[३३]

वैदिक ऋषि द्वारा शिक्षित नारी से ही उत्तम समाज व राष्ट्र की कामना की गई है। वैदिक ऋषियों का स्पष्ट निर्देश है कि विवाह निश्चित समय पर युवावस्था में ही हो उससे पूर्व शिक्षा की अनिवार्यता सभी के लिए हों। इस प्रकार वैदिक काल में स्त्री शिक्षा के महत्व को समझते हुए नारी शिक्षा की उच्च स्थिति थी।

३. वैदिक साहित्य में नारी की वैचारिक स्वतन्त्रता के उद्धरण-

वैदिक साहित्य में उपलब्ध विभिन्न संवादों तथा आख्यानों क माध्यम से नारी अपनी वैचारिक स्वतन्त्रता का प्रयोग करती दृष्टिगत होती है। कुछ उद्धरण दर्शनीय हैं-

बृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर याज्ञवल्क्य - मैत्रेयी संवाद में याज्ञवल्क्य सन्यास ग्रहण करते समय जब मैत्रेयी और कात्यायनी दोनों में सम्पत्ति का बंटवारा करने की बात मैत्रेयी से कहते हैं तो मैत्रेयी विचारपूर्वक प्रश्न करती है कि हे भगवन्! मुझे यदि धन-धान्य से परिपूर्ण समस्त पृथ्वी मिल जाए तो क्या उससे मैं अमृतत्व को पा सकती हैं? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कदापि नहीं, धनसहित पृथ्वी प्राप्त करके धनिक हो सकते हैं अमृतत्व नहीं मिल सकता। तब मैत्रेयी कहती है कि जिससे मेरा मृत्यु बन्धन न छूटे, उस वस्तु को लेकर मैं क्या करुंगी? मुझे तो वह अमूल्य तत्व बताइए जिसे आप जानते हैं और जिसके बल पर आप सांसारिक मोह का त्याग कर रहे हैं। याज्ञवल्क्य तब मैत्रेयी की वैचारिक शक्ति के आधार पर उसे तत्वज्ञान की अधिकारिण ी मानते हैं और आत्मा के स्वरूप का ज्ञान कराते हैं।

मीमांसक मण्डनमिश्र एवं आदि शंकराचार्य के मध्य शास्त्रार्थ की घटना सर्वविदित है, जिसमें मध्यस्थता मण्डनमिश्र की पत्नी भारती द्वारा की गई। शास्त्रार्थ में मण्डनमिश्र के हारने पर भारती ने वैचारिक शक्ति और स्वतन्त्रता के प्रयोग द्वारा आदिशंकराचार्य से कहा-अभी तो आपने मेरे पति के आधे अंग को परास्त किया है, मैं इनकी अर्द्धांगिनी हूं आप मुझसे शास्त्रार्थ करें। आपको अपने पक्ष की रक्षा के लिए मुझसे शास्त्रार्थ करना ही होगा।

अपि तु त्वयाद्य न समग्रजितः प्रथिताग्रणीर्मम पतिर्यदहम्।
वपुरधर्मस्य न जिता मतिमन् अपि मां विजित्य कुरु शिष्यमिमम्।।[३४]

बृहदारण्यक उपनिषद् में गार्गी याज्ञवल्क्य संवाद अत्यंत प्रसिद्ध है जिसमें गार्गी याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछती है और उनके उत्तरों से संतुष्ट होती है। गार्गी के यह प्रश्न करने पर कि ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है? तब याज्ञवल्क्य के यह कहने पर कि गार्गी यह उत्तर की सीमा है, इसके आगे प्रश्न नहीं हो सकता। तब गार्गी उनके कथन का अभिप्राय समझकर मौन हो जाती है फिर अन्य विद्वान् प्रश्न करते हैं और अन्त में गार्गी ने दो प्रश्न किए जिनका उत्तर याज्ञवल्क्य ने अक्षरतत्व का विभिन्न प्रकार से निरुपण करते हुए दिया। निर्णायिका के रूप में गार्गी ने याज्ञवल्क्य को श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता घोषित किया। गार्गी ने जो प्रश्न किए वे उनके गम्भीर अध्ययन का परिणाम थे, किन्तु

अपने पक्ष को अनुचित रूप से सिद्ध करने का दुराग्रह नही किया। वे विद्वत्तापूर्ण उत्तर पाकर न केवल संतुष्ट होती है अपितु याज्ञवल्क्य के ज्ञान की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा भी करती है। यह है नारी की संयमित रूप से वैचारिक स्वतन्त्रता का उत्कृष्ट उदाहरण।

जैमिनीय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण के आधार पर सुकन्या और च्यवन ऋषि का आख्यान– एक बार च्यवन ऋषि के प्रति राजा शर्याति के व्यक्तियों से अपराध हो गया। राजा च्यवन ऋषि के पास क्षमा याचना के लिए अपनी कन्या को भी साथ ले गए। महर्षि च्यवन ने कहा अपनी कन्या मुझे दे दो, सेवा की आवश्यकता आ पड़ी है। मैं तुम्हें क्षमा कर दूंगा। स होवाच– सु वै मे सुकन्या देहीति। राजा ने च्यवन ऋषि को अपनी सुकन्या सौंप दी। उन्हें अपनी पुत्री पर दृढ़ विश्वास था कि प्रजा के हित के लिए वह अवश्य ही स्वीकार कर लेगी। उसी समय देवों के वैद्य अश्विनी कुमार रोगियों की चिकित्सा हेतु पृथ्वी पर घूम रहे थे उन्होंने सुकन्या को देखकर कहा इस जीर्ण शीर्ण को अपना पति क्यों बना रही हो, हम दोनों में से एक को अपना पति बना लो। तब सुकन्या ने नम्रतापूर्वक कहा– पिता ने जिसको मुझे दिया है उसे मैं जीवित रहने तक नहीं छोड़ूंगी।

सा होवाच यस्यै मां पिता अदान्नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति।[३५]

इस प्रकार धैर्यपूर्वक सुकन्या ने वैचारिक स्वतन्त्रता का प्रयोग करते हुए अपने पुत्री धर्म का निर्वाह किया। परिणामस्वरूप अश्विनी कुमारों ने च्यवन ऋषि को युवा बना दिया तथा अपने सदृश सौन्दर्य प्रदान किया।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वैदिक साहित्य में उपलब्ध नारी विषयक वर्णन न केवल नारी की बौद्धिक क्षमता को प्रकट करते हैं अपितु शिक्षित नारी की संयमित वैचारिक स्वतन्त्रता के परिचायक है जो वर्तमान में भी प्रासंगिक है। आज की नारी के लिए भी वैदिक काल की नारी का व्यवहार अनुकरणीय है, प्रेरणास्रोत है।

सन्दर्भः–

1. यजुर्वेद 8.43
2. पारस्कर–गृह्यसूत्र 1.62
3. अथर्ववेद 14.2.63
4. पा. गृ. 1.8.9
5. अथर्ववेद 14.1.38
6. ऋग्वेद 7.20.5
7. ऋग्वेद 10.86.10

8. ऋग्वेद 10.18.7
9. तै. आ. 4.2.1 सायण टिप्पणी
10. निरुक्त 3.21.2
11. ऋग्वेद 1.62.7
12. ऋग्वेद 1.95.6
13. ऋग्वेद 2.39.12
14. ऋग्वेद 3.53.6
15. ऋग्वेद 3.53.4
16. निरुक्त 3.21.2
17. धातुपाठ 1.935
18. निरुक्त 14.20
19. बृ. उप. 1.43
20. ऋग्वेद 1.48.5
21. यजुर्वेद 20.84
22. यजुर्वेद 20.85
23. यजुर्वेद 20.86
24. ऋग्वेद 2.41.16
25. ऋग्वेद 10.86.7
26. ऋग्वेद 10.114.3
27. ऋग्वेद 10.85.46
28. ऋग्वेद 10.109
29. अथर्ववेद 6.133.4
30. बृहद्देवता 2.82-84
31. अथर्ववेद 11.15.18
32. बृ.उप. 6.4.17
33. यजुर्वेद 19.44
34. शंकरदिग्विजय 9.61
35. श. ब्रा. 4.1.59

* * *

कालिदास के साहित्य में नारी सशक्तिकरण

वन्दना रानी
सहायक-प्रवक्ता
पी.जी.डी.ए.वी. महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सम्पूर्ण विश्व में भारतवर्ष अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं सभ्यता के लिए प्रसिद्ध है। यही संस्कृति एवं सभ्यता भारतवर्ष की अनेकता में एकता का प्रतीक है जो इसे अन्य देशों व तत्-तत् देशों की संस्कृति से पृथक् करती है। यह संस्कृति भारतवर्ष की सर्वप्राचीन देवभाषा संस्कृत पर आधारित है। कहा भी गया है- **'संस्कृतिः संस्कृताश्रिता'।** अतएव संस्कृत भाषा का अपना विशद् वाङ्मय है जिसके द्वारा हम व्याकरण, साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, विज्ञान आदि विभिन्न विषयों का अवबोधन कर सकते हैं। संस्कृत साहित्य की दो विधाएँ हैं- **वैदिक साहित्य तथा लौकिक साहित्य।** वैदिक साहित्य में वैदिककालीन तथा आचार्य मनु द्वारा प्रतिपादित संस्कृति का प्रतिपादन किया गया है और लौकिक साहित्य में आदिकवि वाल्मीकि तथा वेदव्यास के अनन्तर महाकवि कालिदास द्वारा तत्कालीन समाज की संस्कृति का प्रतिपादित है। हालाँकि कालिदास के पश्चात् भी अन्य कवियों अश्वघोष, भारवि, दण्डी, श्रीहर्ष, भास, शूद्रक आदि ने भी अपनी-अपनी कृतियों में तत्कालीन समाज की यथार्थ छवि को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है किन्तु इन कवियों में आर्ष कवियों के पश्चात् महाकवि कालिदास का नाम भारतवर्ष के सांस्कृतिक निर्माताओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सर्वप्रसिद्ध है चूँकि कालिदास की कृतियों में तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का जो सरल, सहज एवं यथार्थ चित्रण दृष्टिगोचर होता है वह अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होता।

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में देवताओं की उपासना, आश्रम-व्यवस्था, यज्ञ-परम्परा, संस्कार, धार्मिक विश्वास, शुभाशुभ-शकुन विद्या, भौगोलिक स्थिति, राज्य-व्यवस्था, शासन-व्यवस्था, विविध कलाएँ-वास्तुकला, चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला एवं वाद्यकला, प्राकृतिक-चित्रण, पक्षी वर्णन, वन्य तथा ग्राम्य पशु वर्णन, विभिन्न प्रकार के वृक्ष-लताओं के साथ-साथ तत्कालीन समाज की नारी-स्थिति का अत्यन्त ही सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण किया है।

कालिदास ने अपने ग्रन्थों में नारी का उसकी विभिन्न अवस्थाओं यथा- पुत्री, माता, बहन, विवाहिता स्त्री, प्रेमिका, गर्भवती स्त्री आदि का अत्यन्त मर्मज्ञ चित्राङ्कन किया है जो सहज ही मानव हृदय को हर्ष, सुख, करुणा, प्रेम, वात्सल्य आदि भावों से उद्वेलित कर देता है। अतः कालिदास

के साहित्य में स्त्रियों की तत्कालीन स्थिति का दर्शन विभिन्न रूपों में निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है–

१. **लज्जाप्रिया** – कालिदासकालीन संस्कृति में कहीं पर्दा प्रथा का सङ्केत प्राप्त नहीं होता परन्तु उस समय भी स्त्रियाँ पति के साथ अपने माता–पिता के समक्ष जाने में लज्जा का अनुभव करती थीं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में स्वयं शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त से कहती है–

"जिह्वेम्यार्थपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्।"[१]

अतएव विवाहिता स्त्री का अपने मातृगृह में अधिक समय तक रहना अपवाद का कारण माना जाता था। क्योंकि स्त्री के लिए उसका उसके पति के साथ ही रहना श्रेयस्कर था। फिर वह भले ही अपने ही परिवार या कुलजनों के साथ हो किन्तु यदि उसका पति जीवित है और वह जीवित है तो लोग पति–पत्नी दोनों के चरित्र पर सन्देह करने लगते थे जो कि वर्तमान समाज में भी प्रचलित है। गभर्वती स्त्री भी प्रायः लज्जावश अपनी इच्छाओं को अपने पति अथवा अपने पारिवारिक ज्येष्ठ परिजनों से व्यक्त नहीं करती थी, अतएव उसकी देखरेख हेतु किसी दासी, परिचारिका अथवा उसकी सखी को उसके समीप रखा जाता था जिससे वह स्त्री अपनी इच्छित वस्तुओं आदि को प्राप्त कर स्वयम् एवं भावी सन्तान दोनों ही स्वस्थ रह सकें।

इसी सन्दर्भ में 'विक्रमोर्वशीयम्' में नायिका उर्वशी नायक राजा पुरुरवा से अत्यधिक प्रेम करती है जिसके कारण वह स्वयं विरह–व्यथित होकर अपनी सखी चित्रलेखा के साथ पुरुरवा से मिलने के लिए जाती है और वह अपने इस व्यवहार को निर्लज्ज उद्योग समझती है–

'एष ममापहस्तितलज्जो व्यवसायः।'[२]

इस प्रकार यहां शकुन्तला एवम् इन्दुमती दोनों में ही नारी का लज्जायुक्त व सदाचारिणी भाव दृष्टिगत होता है जो समाज में स्त्री के आदर्श तथा उदात्त चरित्र को प्रस्तुत करता है और उर्वशी स्वाभिमानी तथा निःसङ्कोची प्रतीत होती है जो राजा पुरुरवा के प्रेम में इतनी आत्म–विभोर हो जाती है कि उसे अपने इच्छित कार्य को करने में यह भय रहता है कि उसके द्वारा लज्जाशीलता का अतिक्रमण तो नहीं हो रहा है, क्योंकि लज्जाशीलता स्त्रियों का स्वाभाविक धर्म है जो कि वर्तमान समाज में भी प्रचलित है।

२. **आज्ञाकारिणी** – स्त्री का परम धर्म आज्ञाकारिणी होना था फिर चाहे वह अविवाहिता हो या विवाहिता क्योंकि अविवाहिता स्त्री (कन्या) के लिए माता–पिता की आज्ञा का पालन करना सर्वोपरि था। उस समय यदि कन्या किसी पुरुष के प्रति अनुरागवती होती भी थी तो वह पिता की आज्ञा से ही उस व्यक्ति को पति रूप में वरण करती थी–

"श्रीः साभिलाषाऽपिगुरोरनुज्ञांधीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष।"[३]

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि विवाह चाहे पुत्र का हो या पुत्री का पिता की अनुज्ञा अपेक्षित हुआ करती थी। अतएव इन्दुमती, सीता आदि नायिकाओं ने पिता की आज्ञानुसार ही आमन्त्रित विभिन्न वरों में से सुयोग्यवर क्रमशः अज, राम आदि का स्वयं चयन किया।

३. **परकीया धन** – कन्या को परकीया धन माना जाता था। सुयोग्य वर मिलने पर माता-पिता चिन्ता मुक्त हो जाते थे। शकुन्तला को पतिगृह भेजकर महर्षि कण्व ने अत्यन्त शान्ति का अनुभव किया था क्योंकि विवाहिता शकुन्तला उनके आश्रम में न्याससदृश थी। अतएव वे कहते हैं-

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।[४]

ऐसा ही समानान्तर उदाहरण रघुवंश में प्राप्त होता है कि कुमुद ने अपनी बहन का विवाह एक क्षण के परिचयोपरान्त ही कुश के साथ कर दिया था क्योंकि कुश एक उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति थे –

इमां स्वसारं च यवीयसीं मे कुमुद्वती नार्हसि नानुमन्तुम्।[५]

इस प्रकार कन्या तत्कालीन समाज में परकीया तो थी परन्तु उसे बोझस्वरूप नहीं माना जाता था। कन्या हेतु वर अन्वेक्षण के समय यह अवश्य देखा जाता था कि वर कुलीन अथवा सुयोग्य अथवा कन्या के भरण-पोषण करने में समर्थ आदि योग्यताओं से युक्त है अथवा नहीं। वर्तमान समाज में भी इस प्रचलन को भली-भाँति देखा जा सकता है।

४. **पतिव्रता** – तत्कालीन समाज में बहुपत्नी प्रथा थी। पत्नियों का परस्पर मिल-जुलकर साथ रहना सामान्य बात थी। इन सभी के कर्त्तव्य एवम् अधिकार परम्परा से ही सुनिश्चित थे। पति अपनी सभी पत्नियों का सम्मान करता था एवं पत्नियों के लिए पति ही सब कुछ होता था-

प्रियतमभिरसौ तिसृभिर्वभौ तिसृभिरेव भुवं सह शक्तिभिः।[६]

यहाँ 'प्रियतमभिरसौ' पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्त्री की पतिव्रता धर्म ही उसका श्रेष्ठता की कसौटी था। कालिदास के समय में स्त्री का सम्मान प्रायः दो बातों पर निर्भर था- पातिव्रत्य तथा वीर-प्रसविता। अतएव पति को प्रसन्न रखना उसका प्रथम कर्तव्य था। स्त्री का सम्पूर्ण सौन्दर्य एवं रूप-सज्जा पति अथवा प्रिय के लिए थी जो उसके पत्नी एवं प्रेमिका के रूप का परिचायक है। कुमारसम्भव में स्वयं पार्वती शिव के द्वारा स्वीकार न किए जाने पर अपने रूप को व्यर्थ मानते हुए कहती हैं-

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती
निनिन्दरूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।[७]

महर्षि कण्व भी शकुन्तला को उसकी विदाई के समय आशीर्वाद देते हुए कहते हैं–

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपिसम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि॥[८]

इसी भावना से सम्प्रेषित करते हुए मारीच शकुन्तला को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं–

अखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव॥[९]

वहीं मेघदूत में इस बहुपत्नी प्रथा का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है। मेघदूत में यक्ष एवं यक्षिणी दोनों परस्पर समर्पित प्रणयी हैं जो अन्य स्त्री अथवा पुरुष की कदापि कल्पना भी नहीं कर सकते।

सीता के परित्याग की घटना से भी सीता के उदात्त चरित्र का बोध होता है कि इतनी विषम परिस्थिति में भी वह राम के लिए एक भी कुशब्द का प्रयोग नहीं करती बल्कि स्वयं ही अपने भाग्य को कोसती हुई पुनः पुनः अपनी ही निन्दा करती हैं।

किन्तु अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला का तिरस्कार किए जाने पर वह राजा के निष्ठुर व्यवहार को देखकर उसे कटु वचन कहती हुई 'अनार्य' सम्बोधित करती है अर्थात् उस समय में स्त्री किसी के द्वारा अपमानित किए जाने पर उसकी भर्त्सना करते हुए उसे कटु वचन भी कह देती थी।

अतः यहाँ सीता एवं शकुन्तला दोनों में नारी के सशक्त रूप में पर्याप्त कालिक अन्तर दृष्टिगत होता है जो कि स्वाभाविक भी है जहाँ सीता का समाज के प्रति उदात्त चरित्र युक्त एवं क्षमाशील भाव दिखाई देता है वहीं कालान्तर में स्त्री में कई परिवर्तन हुए जिनके आधार पर वह शकुन्तला के समान अपना अपमान या तिरस्कार किए जाने पर निन्दा करती है या कटु वचन भी कह देती है। यह विकास निरन्तर गतिशील है।

५. **विभिन्न कलाओं में निपुण** – यद्यपि तत्कालीन समाज में स्त्री का कार्य–क्षेत्र परिवार तक ही सीमित था फिर भी उनमें विद्या, विविध शास्त्रादि का प्रचुर ज्ञान था। इस विषय में सामान्य नारी के प्रति पुरुषों की धारणा दुष्यन्त के निम्ननिर्दिष्ट कथन से अभिव्यञ्जित होती है–

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु, संदश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजातमन्यै द्विंजैः परभृताः खलु षोषयन्ति॥[१०]

यहाँ 'प्रतिबोधवत्य:' पद से स्पष्टतः विदित होता है कि उच्च वर्ग की स्त्रियों में पढ़ने–लिखने का प्रचार था। इन्दुमती स्वयंवर के अवसर पर अपने व्यापक ज्ञान एवं विवेक का परिचय देती है तथा वह पति की सचिव, सुख व कला–शिष्या भी है। सुदक्षिणा भी धार्मिक विधियों में पति का हाथ बँटाती है। शकुन्तला अपने प्रेमी राजा दुष्यन्त को नलिनि दल पर पत्र लिखकर अपनी दक्षता का बोध कराती है। तत्कालीन समाज की स्त्रियाँ आचार्या होती थीं, कलाविवाद आदि में निर्णायिका का स्थान ग्रहण करती थी। इससे स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उस समय नारी विभिन्न कलाओं आदि में भी निपुण थी।

६. **सहधर्मिणी एवम् आदर की पात्र** – सहधर्मिणी अर्थात् प्रत्येक विषम या अनुकूल अवस्था में सदैव पति के साथ रहना या उसका अनुसरण करना। इस समय राजाओं के लिए अनेक पत्नी (बहुपत्नी) प्रथा प्रचलित थीं।

तमादौ कुलविद्यानामर्थमर्थविदांवरः।
पश्चात् पार्थिवकन्यनां पाणिमग्राहयत् पिता।।[११]

राजा रघु, दिलीप, कुशपुत्र अतिथि, दुष्यन्त, पुरुरवा आदि प्रमुख उदाहरण है। इन सभी पत्नियों में ज्येष्ठ पत्नी को अन्य पत्नियों की अपेक्षा अधिक आदर एवं सम्मान प्राप्त होता था तथा युवराज बनने का अधिकार ज्येष्ठ पत्नी के पुत्र को ही प्राप्त होता था–

वैशस्य कतीरमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणायां तनयं यथाचे।[१२]

स्त्री समाज में आदर की पात्र थी। स्त्री–वध निषिद्ध था। उसे मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। राम द्वारा किया गया ताड़का–वध एक अपवाद मात्र था। इसी मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए लक्ष्मण ने शूर्पणखा का वध न करके केवल उसके नाक एवं कान काटे थे। ताड़का–वध के प्रसंग में कहा भी गया है–

उद्यतैक भुजयष्टिमायतीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्तमेखलाम्।
तां विलोक्य वनितावधे घृणा पत्रिणा सह मुमोच राघवः।।[१३]

इस प्रकार कालिदास ने अपनी कृतियों में सदैव स्त्रियों के प्रति उचति सम्मान के साथ–साथ समान व्यवहार भी प्रदर्शित किया है जिसे आज के समाज में भी स्पष्टतः देखा जा सकता है। राजा दिलीप, रघु, पुरुरवा, दुष्यन्त, अग्निमित्र, श्रीराम आदि सभी नायक उनकी कृतियों में अपनी प्रमुख पत्नी (नायिका) का सम्मान करते हैं। स्वयं अग्निवर्ण ने तो अपनी पत्नी को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था। राजाओं की सपत्नियों में ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा की मर्यादा है तथा राजा उसका भी पालन करता है। अतः कालिदास ने पत्नी के साथ–साथ माता, स्वसा, पुत्री आदि सभी चरित्र पात्रों को गरिमा प्रदान की है। रति व अज–विलाप वर्णन द्वारा पति–पत्नी दोनों

में समानता प्रदर्शित होती है जिसमें भी अज की पीड़ा अधिक गहरी है। कालिदास कहते हैं–

स्त्री पुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम्।[१४]

स्पष्टतः प्रतीत होता है कि कालिदास के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने सामान्य स्त्री को इतना गौरव प्रदान नहीं किया है।

७. **परामर्शदात्री** – कालिदास के मतानुसार राजा के लिए मनु द्वारा प्रतिपादित प्रथम कर्त्तव्य 'वर्णाश्रम का पालन' ही करणीय है–

नृपस्य वर्णाश्रम पालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।[१५]

सभी वर्णाश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ है। कालिदास ने इसे सर्वोपकारक्षम कहा है। बिना स्त्री के गृहस्थ आश्रम असम्भव है क्योंकि गृह का निर्माण एकमात्र स्त्री से ही होता है पत्नी द्वारा ही अपने पति की एकान्त पीड़ा को दूर करने में सक्षम होने के कारण वह उसकी सङ्गिनी अथवा सखी कहलाती है। परिवार के आवश्यक विषयों, कन्या के विवाह आदि कार्यों में माता से परामर्श लिया जाता है। राजा भी अपनी ज्येष्ठा पत्नी से अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों हेतु सम्मति लेता था। पार्वती के विवाह के विषय में भी उसकी माता मेना से परामर्श किया गया था–

शैलः संपूर्ण-कामोऽपि मेनामुखमुदैक्षत।
प्रायेण गृहिणी-नेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः।।[१६]

इस प्रकार तत्कालीन समाज में प्रयुक्त 'अर्धाङ्गिनी' पद की प्रायोगिकता दृष्टिगोचर होती है जो सम्प्रति भी दिखाई देती है।

८. **जाया** – पत्नी का एक अन्य नाम जाया भी है। 'जाया' से अभिप्राय उस स्त्री से है जिसमें या जिसके द्वारा सन्तान उत्पन्न की जाए। इसे 'वंशकरी' के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि यह अपने पति के वंश को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है।

इसलिए पत्नी की सार्थकता अन्ततोगत्वा उसके प्रसूतिमती होने में है। शास्त्रों में इसे ध्यान में रखते हुए यह व्यवस्था दी गई है कि स्वस्थ मनुष्य को ऋत-स्नाता पत्नी के साथ सहवास अवश्य करना चाहिए क्योंकि यह काल गर्भधारणार्थ सर्वथा उपयुक्त होता है। मनु ने कहा है–

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा।[१७]

गर्भवती स्त्री की समस्त सुखसुविधाओं एवं स्वास्थ्य का भली-भाँति ध्यान रखा जाता था। प्रायः स्त्रियाँ सङ्कोचवश अपनी इच्छाओं को व्यक्त नहीं करती, यही सोचकर राजा दिलीप पत्नी सुदक्षिणा की सखियों के माध्यम से उसकी अभिलाषा पूछता था। इसका एकमात्र कारण यही था कि गर्भवती स्त्री सर्वदा प्रसन्न रहे जिससे उसकी भावी सन्तान भी स्वस्थ रहेगी। कुमारभृत्या विशेषज्ञ

के निर्देशानुसार ही गर्भवती स्त्री की देखभाल करनी चाहिए-

कुमार भृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तै रथ गर्भ कर्मणि।[१८]

आज भी गर्भवती स्त्री की देख-रेख चिकित्सक के परामर्शानुसार तथा परिवार के प्रत्येक सदस्य के द्वारा समुचित रूप से की जाती है।

९. **प्रशासनिक अधिकारिणी** - कालिदास की कृतियों में नारी के विभिन्न चरित्रों चाहे वह राजमहिषी हो या परिचारिका, सभी के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया गया है। ऋतुपर्ण की महिषी उसकी मृत्योपरान्त जब तक उसका गर्भस्थ बालक जन्म लेकर युवा नहीं होता, वही पति के राज्य शासन स्वयं सम्भालती है-

तं भावार्थं प्रसव-समयाकाङ्क्षिगीनां प्रजाना
अन्तर्गूढं क्षितिरिव नभोवीज-मुष्टिं दधाना।
मौलैः सार्धं स्थविर-सचिवै हैम सिंहासनस्था
राज्ञो राज्यं विधिवदशिषद् भर्तुव्याहताज्ञा।।[१९]

अतः उस समय स्त्री इतनी सक्षम थी कि वह राज्य-सञ्चालन भी करती थी।

१०. **स्वाभिमानी** - कुमारसम्भव की पार्वती विभिन्न प्रकार के सुख-ऐश्वर्य आदि के साधनों से युक्त होने एवं माता मेना के अनेक प्रकार से समझाने के पश्चात् भी वह हिमालय के तपोवन में जाकर कठिन से कठिन तपस्या करते हुए स्वाभिमानपूर्वक अपने इच्छित लक्ष्य अर्थात् शिव को पति रूप में प्राप्त करने में सफल हुई-

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः।।[२०]

११. **परिव्राजिका** - तत्कालीन समाज में केवल पुरुषों को ही परिव्राजक बनने एवं संन्यास ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त नहीं था अपितु स्त्रियाँ भी संन्यास लेने के निर्णय में सक्षम थीं। सङ्कट के समय में वे ज्येष्ठ जनों के बीच एकाकिनी निरापद रहती थीं। मालविकाग्निमित्र की परिव्राजिका ने काषाय ग्रहण किया था-

भ्रातुः शरीरमग्निसात् कृत्वा पुनर्नवीकृतवैधव्यदुःखया
मया त्वदीयं देशमवतीर्थ इमे काषायेगृहीते।[२१]

१२. **स्वनिर्णायिका** - शकुन्तला राजा दुष्यन्त से प्रेम करती है और अपने पिता महर्षि कण्व की अनुपस्थिति में राजा दुष्यन्त के साथ गान्धर्व विवाह कर लेती है। इस विषय पर राजा दुष्यन्त कहते हैं-

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिता।।[२२]

उपर्युक्त कथन से विदित होता है कि शकुन्तला एवम् उससे पूर्व भी अनेक राजर्षि कन्याओं ने गान्धर्व विवाह कर अपने निर्णय लेने की क्षमता द्वारा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा नारी के सशक्त रूप को प्रदर्शित किया।

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह विदित होता है कि कालिदास के साहित्य के अध्ययनोपरान्त नारी की स्थिति समाज में अत्यन्त सम्मानजनक थी। नारी अपने प्रत्येक रूप में सशक्त दृष्टिगोचर होती है। समाज का कोई भी कार्य ऐसा नहीं दिखाई देता जो नारी के लिए असम्भव हो। नारी अपने हर रूप में सशक्त एवं कर्त्तव्यनिष्ठ है। वह समाज के विभिन्न रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं का निर्वहण करते हुए अपने स्वाभाविक गुण लज्जाशीलता को यथारूप बनाए रखने में सफल हुई है। इसी प्रकार से कालिदास के साहित्य की नारी अनेक प्रकार से अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों को सम्यक्तया व्यवहृत कर स्वयं को समाज के समक्ष सशक्त रूप में प्रस्तुत करती हैं। कालिदास के साहित्य में नारी के विभिन्न रूप पत्नी, प्रेमिका, माता, स्वसा, बहन आदि चरित्र-पात्रों का दिग्दर्शन होता है। प्रत्येक चरित्र का चित्रण अत्यन्त उदात्त एवं गरिमामय रूप में किया गया है जो लज्जाप्रिया, आज्ञाकारिणी, सहधर्मिणी, पतिव्रता, परामर्शदात्री स्वाभिमानी, स्वनिर्णायिका आदि गुणों से युक्त होने के साथ विभिन्न कलाओं में निपुण एवं समाज तथा गृह दोनों ही स्थानों में आदर एवं सम्मान की पात्र थी। अतएव तत्कालीन समाज में नारी की जिस स्थिति का चित्रण किया गया है वही वर्तमान समाज में प्रत्येक वर्ग की नारियों की स्थिति कालिदासकालीन नारी की स्थिति की अपेक्षा अत्यधिक श्रेष्ठ है। वर्तमान समय की नारी जो समस्त विश्व की लगभग आधी आबादी है, वह अपना योगदान उसी सापेक्ष अत्यन्त दृढ़ता एवं कर्त्तव्यनिष्ठता के साथ निरन्तर कर रही है।

सन्दर्भः-

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 7/26
2. विक्रमोर्वशीयम् - 2/10
3. रघुवंशम् - 5/38
4. अभि.शाकुं. - 4/22
5. रघुवंशम् - 16/85
6. वही - 8/18
7. कुमारसम्भवम् - 5/1
8. अभि.शाकुं. - 1/4
9. वही - 7/28
10. अभि.शाकुं. - 5/22

11. रघुवंशम् - 17/3
12. वही - 17/9
13. रघुवंशम् - 11/17
14. कुमारसम्भवम् - 6/12
15. रघुवंशम् - 14/67
16. कुमारसम्भवम् - 6/85
17. मनुस्मृति - 3/45
18. रघुवंशम् - 3
19. वही - 19/57
20. कुमारसम्भवम् - 5/2
21. मालविकाग्निमित्रम् - 5/12
22. अभि.शाकुं. - 3/20

* * *

बौद्ध संघ संरक्षिकाः उपासिका विशाखा

डॉ. शशी शर्मा
दौलतराम महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

भगवान् बुद्ध के प्रधान भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक तथा उपासिकाओं का बौद्ध धर्म और संघ के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान रहा है। उपसिका विशाखा का उपासिका जन्म अंग देश के अन्तर्गत भद्दिया नगर में हुआ। गृहपति मेण्डक उनके दादा, धनंजय पिता तथा माता सुमना देवी थी। गृहपति मेण्डक की गणना अमित-भोग-सम्पन्न पांच महानुभावों में की जाती थी। ये सभी मगधराज सेनिय बिम्बिसार के राज्य में रहते थे। गृहपति मेण्डक के स्वयं के परिवार में उनकी पत्नी चन्द्रपद्मा, उनका ज्येष्ठपुत्र धनञ्जय तथा उनकी पत्नी सुमना देवी तथा उनका दास पूरण भी महापुण्यात्मा थे। ऐसा कहा जाता है कि गृहपति मेण्डक स्नानादि से निवृत्त होकर, जब धान्यागार (अन्न भण्डार) को संमार्जित करवा कर, उसके द्वार पर श्रद्धापूर्वक बैठते थे, तब आकाश से अन्न की वर्षा होती थी तथा धान्यागार अन्न से भर जाता था। यह उनका दिव्य बल था। मगधराज सेनिय बिम्बिसार ने महामात्य सर्वार्थक से इस दिव्य-बल की जांच करवाई तथा यह घटना सत्यापित भी हुई थी

भगवान् बुद्ध का प्रथम दर्शन तथा देशना -

भगवान् बुद्ध भद्दिया नगर में चारिका के लिये आये थे। गृहपति मेण्डक ने सूचना मिलते ही विशाखा को भगवान् बुद्ध के स्वागत के लिये निर्देश दिया। विशाखा पांच सौ कन्याओं और दासियों सहित शास्ता के समीप गयी। उन सभी ने श्रद्धापूर्वक वन्दना की। भगवान् बुद्ध ने उन्हें देशना दी। देशना के अन्त में विशाखा सहित सभी कन्याएँ और दासियाँ स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुई[1] गृहपति मेण्डक (श्रेष्ठी) भी बुद्ध के समीप गये तथा देशना सुनकर वे भी स्रोतापत्ति समीप-फल में प्रतिष्ठित हुए। स्रोतापत्ति-फल के विषय में कहा जाता है कि जब साधक आध्यात्मिक प्रगति की क्षमता प्राप्त करके, लोकोत्तर भूमि में प्रविष्ट हो, समाधिस्थ चित्त द्वारा स्रोतापन्न नामक अवस्था को प्राप्त करता है तब सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा और शीलव्रत परामर्श नामक तीन संयोजनों को समूल नष्ट करके निर्वाण की प्रथम अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यह घटना विशाखा के बुद्ध

1. थेरी गाथा में उल्लेख प्राप्त होता है कि विशाखा ने बुद्ध से प्रवज्या प्राप्त की थी।
करोध बुद्धसासनं यं कत्वा नानुतप्पति। खिप्पं पादानि धोवित्वा एकमन्ते निसीदथाशति

के प्रथम दर्शन तथा देशना के रूप में स्मरण की गयी है। गृहपति मेण्डक ने भगवान् बुद्ध तथा भिक्षु संघ को उचित खाद्य-भोज्य से आठ मास तक संपर्तित किया। ऐसे आध्यात्मिक परिवेश में विशाखा का बाल्यकाल व्यतीत हुआ था।

महापुण्य धनञ्जय का राजा प्रसेनजित् कोशल के राज्य में निवास हेतु जाना-

राजा बिम्बिसार और राजा प्रसेनजित् कोशल एक दूसरे के रिश्ते में बहनोई लगते थे। प्रसेनजित् ने सोचा, क्यों न मैं बिम्बिसार से एक अमित्-भोग-सम्पन्न महापुण्य की याचना करूँ? ऐसा सोचकर वे बिम्बिसार के राजगृह में आये तथा एक महापुण्य की याचना की। राजा बिम्बिसार ने अमात्यों के परामर्श के पश्चात् अपने पुत्र धनञ्जय को भेजना स्वीकार किया। पुत्र धनञ्जय ने भी पिता की आज्ञा मानकर, बिम्बिसार के साथ जाना स्वीकार किया, गृहपति मेण्डक ने उनकी सारी व्यवस्था करवाई तथा पुत्र धनञ्जय को प्रदान किया। श्रावस्ती से सात-योजन की दूरी पर ही धनञ्जय ने निवास करना स्वीकार किया। प्रसेनजित् ने चौदह ग्राम तथा वह नगर धनञ्जय को दिये। जिस नगर में सायं काल वास किया था। इसी कारण वह स्थान साकेत नगर कहलाया।

विशाखा का विवाह श्रावस्ती के मृगार श्रेष्ठी के पुत्र पूर्णवर्धन से होना निश्चित हुआ -

ऐसा कहा जाता है कि मृगार श्रेष्ठी के अमात्य श्रावस्ती में योग्य कन्या न पाकर, साकेत में उपयुक्त कन्या की खोज में आये थे। विशाखा अपनी साखियों तथा दासियों के साथा महावापी पर उत्सव में गई थी। मृगार श्रेष्ठी के अमात्यों के द्वारा विशाखा को देखना तथा उसके रूप-सौन्दर्य, बुद्धिमत्ता तथा मधुरभाषी आदि गुणों से प्रभावित होकर उनके पिता धनञ्जय द्वारा भली प्रकार विचार करके अपनी स्वीकृति प्रदान करना। मृगार श्रेष्ठी ने कोशल राज से साकेत जाने की स्वीकृति मांगी तथा पुत्र पूर्णवर्धन के विवाह का निमन्त्रण दिया। कोशल राज भी धनञ्जय (महाकुल पुत्र) को सन्तुष्ट करने के अभिप्राय से साकेत नगर में जाने के लिए तैयार हो गये।

विवाह-प्रबंध की दिव्यता- कोशल राज प्रसेनजित् तथा मृगार श्रेष्ठी का बड़ा परिवार साकेत में विवाह में सम्मिलित होने आया। धनञ्जय ने उनके वास-स्थान, वस्त्र भोजनादि की अद्भुत व्यवस्था की। कोशलराज ने विशाखा की विदाई के लिये सन्देशा भेजा। धनञ्जय ने प्रतिशासन भेजा कि वर्षा-ऋतु ने चौमासा में प्रस्थान का उचित काल नहीं है तथा विशाखा का महालता आभूषण भी तैयार नहीं हुआ है। वर्षा की अधिकता में सूखा ईधन न मिलने पर गजशाला व गौशाला के द्वारों से ईधन की भरपाई की गई। इसके बाद कपड़ों की बत्तियाँ बनाकर तेल में भिगोकर भोजनादि की व्यवस्था करवाई गयी। यह विवाह-प्रबंध की दिव्यता का परिचय देता है। दहेज के रूप में विशाखा को नौ करोड़ के मूल्य का महालता प्रसाधन पहना कर विदा किया गया।

55 सौ गड़ियों में धन, स्वर्ण, रजत सिक्के, आभूषण, वस्त्र, बर्तन आदि भरकर दहेज के रूप में दिये। उत्तम रथ, दुधारू पशु, दास–दासियाँ तथा खेती का समान दिया। विशाखा की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि चौदह ग्रामों के नागरिक उनके साथ जाने को उत्सुक थे किन्तु मृगार श्रेष्ठी ने उनके भोजनादि की व्यवस्था में असमर्थता जानकार उन्हें वापस जाने की प्रार्थना की। धनञ्जय ने इस प्रकार विशाखा के विवाह में किसी भी तरह की कमी नहीं रखी जो उन की दिव्य–बल का परिचायक है।

पतिकुल में दस शिक्षाओं के आचरण का पालन करना बताया जाना–

धनञ्जय ने सभी श्रेष्ठियों को एकत्रित करके, आठ कौम्बिकों को पंच बनाकर कहा कि– 'यदि मेरी कन्या से कोई अपराध हो जाये, तो आप उसका शोधन करना'। दस शिक्षाओं में ससुराल में सुखपूर्वक रहने का विचार बताया गया था।

परिवार के सदस्यों (सास–सुसर आदि) की गुप्त बातें दास–दासियों को नहीं कहनी चाहिए। दास–दासियों के दोषों को परिवार के सदस्यों को नहीं बतानी चाहिए। अमीर–गरीब, जाति मित्रों जो चाहे वे दान दे पायें, अथवा न दान पायें। उन्हें दान उपहारादि अवश्य दें। सास–ससुर व पति से पहले भोजन, शयन नहीं करना चाहिए। ससुराल में सभी का आदर करना चाहिए। आये अतिथियों का भोजनादि देकर तृप्त करना चाहिए।

विशाखा ने बृहत् परिवार के साथ श्रावस्ती नगर में अनावृत्त यान में निर्भीकता के साथ प्रवेश किया। श्रावस्ती के नागरिकों ने विशाखा के सौन्दर्य तथा अपार ऐवर्ण्य की प्रशंसा की। नागरिकों के दिये गये उपहारों को स्वीकार करके, उनको वितरित कर दिया। उपासिका विशाखा का यह कदम उनकी बुद्धिमत्ता तथा दानशीलता को बताता है।

सेवाभाव गुण के लिए कहा गया है कि जब वे ससुराल आई, उसी रात आजन्य घोड़ी की गर्भ वेदना के समय दास–दासियों सहित जाकर उसके प्रसव होने तक सेवा करना आदि इनके प्राणिमात्र के प्रति महाकरूणा भाव को दर्शाता है। मृगार श्रेष्ठी निर्ग्रन्थों के अनुयायी थे। विशाखा स्रोतापन्न श्राविका थी। एक दिन मृगार श्रेष्ठी ने सन्देश (शासन) भेजा कि 'घर में अर्हत् आये हैं, आप आकर उनकी वन्दना करो।' अर्हत् नाम सुनते ही विशाखा वन्दना के लिए वहाँ गयी। निग्रन्थों को निर्वस्त्र देखकर वे घबरा गयी उनके मुख से निकला कि धिक् क्या अर्हत् ऐसे होते है? धिक् शब्द सुनकर निर्ग्रन्थी श्रमणों ने इसे अपना अपमान समझा। उन्होंने श्रेष्ठी से कहा कि तुम श्रमण गौतम की श्राविका को अपने पुत्र के क्यों लाये हो? इसे घर से बाहर करो। मृगार श्रेष्ठी दुविधा (असमंजस) में पड़ गये। विशाखा महाकुल की कन्या हैं, मात्र कहने से इन्हें घर से निकाला नहीं जा सकता है। बड़ी विनम्रता से उन्हें समझा कर, सम्मान सहित विदा किया। इस घटना से मृगार श्रेष्ठी विशाखा के प्रति रूष्ट हो गये थे।

एक दिन श्रेष्ठी भोजन कर रहे थे तभी घर के द्वार पर एक स्थविर भिक्षु भिक्षाचार करता आया। विशाखा ने संकेत दिया, किन्तु मृगार श्रेष्ठी ने अनदेखा कर दिया। तब विशाखा ने स्थविर से कहा कि भन्ते, आप आगे जायें, मेरे सुसर बासी भोजन कर रहे हैं। इस घटना से वे अत्यन्त क्रोधित हो गये, तथा विशाखा को घर से निकालने का अवसर मिल गया। सभी अनुचरों को विशाखा को घर से निकालने की आज्ञा दी किन्तु वे सभी चुप-चाप खड़े रहे, क्योंकि सभी में विशाखा के प्रति गहरी निष्ठा थी।

विशाखा ने ससुर को सभ्य स्वर में उत्तर दिया कि- 'तात। मुझे आप ऐसे नहीं निकाल सकते। आप माता-पिता की उपस्थिति में तथा आठ कौटुम्बिकों की विद्यामनता में लाये है। पहले आप कौटुम्बिकों के सामने मेरे अपराधों का परिशोधन करवाये तभी मैं अपराध सिद्ध होने पर घर से बाहर जाऊँगी।' यह घटना भी उनके (विशाखा के) निडर-भाव तथा प्रज्ञा को बताती है।

कौटुम्बिको के सम्मुख विशाखा का स्पष्टीकरण-

विशाखा ने पिताजी द्वारा दी गई दस शिक्षाओं का वास्तविक अर्थ बताया कि- ससुर को भिक्षुक को भिक्षा न देने पर की घटना के स्पष्टीकरण में कहा क ये इस जन्म में पुण्य (दान) कर्म नहीं करते, अतएव पूर्वजन्म के पुण्य का फल होने के कारण सुखपूर्वक खा रहे हैं। मैंने यह कहकर कोई अशिष्ट व्यवहार नहीं किया है। अन्यमनस्कता दोष कहने पर आजन्य घोड़ी के प्रसव-समय पर दी सेवा को बताया। इस तरह मृगार श्रेष्ठी के द्वारा लगाये दोषों को स्पष्ट कथन द्वारा काटा। कौटुम्बिकों के समक्ष पिताजी की दस शिक्षाओं के मर्म को बताया। कौटुम्बिकों ने मृगार श्रेष्ठी को कहा- हमारी पुत्री में कोई दोष सिद्ध नहीं हो पाया है आप निष्कारण इन्हें घर से नहीं निकाल सकते हो।

विशाखा का स्वाभिमान-विशाखा ने कौम्बिकों के सम्मुख कहा कि अब मैं दोष-मुक्त हूँ तथा अब मैं स्वयं घर से जा रही हूँ। मृगार श्रेष्ठी ने क्षमा याचना की। विशाखा ने क्षमा-प्रदान करते हुए एक शर्त रखी। मैं बुद्ध-धर्म में अनुरक्त कुल की कन्या हूँ। भिक्षु-संघ की सेवा करना मेरा परम कर्त्तव्य है। यदि भिक्षु-संघ की सेवा का अवसर दिया जायेगा तभी आपके घर में निवास करूँगी। इस शर्त में मृगार श्रेष्ठी ने यह बात जोड़ी कि बुद्ध का स्वागत तुम स्वयं करोगी मैं उसमें उपस्थित नहीं रहूँगा। विशाखा ने ऐसा स्वीकार कर लिया।

विशाखा का मृगार-माता पद को प्राप्त करना -

विशाखा ने बुद्ध को संघ सहित आमन्त्रित किया। निर्ग्रन्थी श्रमणों ने श्रेष्ठी को श्रमण गौतम (बुद्ध) के स्वगतार्थ जाने से रोका। विशाखा ने संदेश भेजा-आप बुद्ध का धर्मोपदेश सुनें। श्रेष्ठी ने कनात के बाहर से उपदेश सुना। बुद्ध ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा- 'तुम चाहे तो

कनात के बाहर, पर्वत की आड़ से, चक्रवाल के अन्तिम छोर पर ही बैठो, मैं बुद्ध, तुझे वहाँ से उपदेश सुना सकता हूँ'। बुद्ध के उपदेश सुनकर श्रेष्ठी के पाप स्वयं ही विनष्ट होने लगे। उपदेश की समाप्ति तक वे (श्रेष्ठी) भी स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हो गये। तब उन्होंने शास्ता को नमन किया तथा शास्ता के सम्मुख ही विशाखा को सम्बोधित करके कहा कि- आज से आप मेरी माता हैं। इस घटना के बाद से विशाखा के नाम के साथ 'मृगार-माता' शब्द जुड़ गया। मातृपद प्रदान के उत्सव पर श्रेष्ठी ने विशाखा को एक लाख मूल्य का 'धनमत्थ प्रसाधन' आभूषण प्रदान किया धम्मपद अट्ठकथा के आधार पर ज्ञात होता है कि विशाखा मृगार माता प्रतिदिन बुद्ध का उपदेश सुनती थी। विहार में जाकर आगन्तुक, रोगी भिक्षु- भिक्षुणियों की देखभाल करती थीं।

पूर्वाराम में प्रासाद निर्माण का संकल्प लेना -

उपासिका विशाखा दासियों सहित विहार मे उत्सव के अवसर पर धर्म-श्रवण के लिये गई थीं। इस अवसर पर उन्होंने महालता प्रसाधन आभूषण (नौ करोड़ के मूल्य का) पहना हुआ था। विहार के नियमानुसार, उन्होंने सभी आभूषणों को दासी सुप्रिया को सम्भालने को दे दिये। सारा दिन विहार में आगन्तुक, गमिक, रोगियों की सेवा के बाद उन्होंने सुप्रिया दासी से अपने आभूषण मांगे। सुप्रिया को अपनी गलती का भान हुआ। उसने स्वामिनी विशाखाको वस्तुस्थिति की सूचना दी। विशाखा ने सुप्रिया को समझाया कि यदि आनन्द स्थविर ने आभूषणों को उठाकर कहीं रख दिया हो, तो उसे मत लाना। दासी ने विहार में जाकर आभूषणों को खोजा। आनन्द स्थविर ने शास्ता को सूचित करके उन्हें सीढ़ी के पास रख दिया था। वस्तु स्थिति को समझ कर विशाखा ने यह निर्णय लिया कि इस आभूषण के मूल्य राशि से (नौ करोड़) से वे पूर्वाराम में प्रासाद निर्माण का कार्य करूँगी। उनका यह महादान संकल्प बुद्ध-संघ के लिए अभूतपूर्व है, जो नारी जाति के लिए प्रशंसनीय है।

शास्ता प्रायः विशाखा के घर से भिक्षाग्रहण करके नगर के दक्षिण-द्वार से निकल कर, जेतवन में वास करते थे। जब वे अनाथपिण्डिक के घर से भिक्षा ग्रहण करते थे। तब नगर के पूर्व-द्वार से निकल कर पूर्वाराम में वास करते थे। जब शास्ता नगर के उत्तर-द्वार के ओर गमन करते थे कि अब वे चारिका के लिए प्रस्थान करेगे। विशाखा को जब यह ज्ञात हुआ, तब वे शास्ता (बुद्ध) को लौटा लाने को गयी, किन्तु वे असफल नहीं हो सकी। तब विशाखा ने प्रार्थना कि "भन्ते! तो फिर आप कृत-अकृत के ज्ञाता किसी एक भिक्षु को आप मेरे लिए लौटा कर जायें।" शास्ता ने कहा कि 'तुम जिस भिक्षु का पात्र ले लोगी, वह आपके साथ लौट जायेगा।'

विशाखा ने बुद्धिमान से काम किया। उन्होंने आयुष्मान मौग्गल्लान का पात्र स्वीकार किया, क्योंकि वे ऋद्धि-बल सम्पन्न थे। वे अपने ऋद्धि-बल से विहार-निर्माण का कार्य शीघ्रता से सम्पन्न करवा पायेगें। शास्ता ने मौग्गल्लान (मौगल्यायन) को पांच सौ भिक्षुओं को परिवार सहित लौटा दिया।

नौ मास की अवधि में दो मंजिल का विशाल प्रासाद, जिसकी प्रत्येक मंजिल में पांच-पांच सौ छोटे-बड़े कमरे थे, वह बनकर तैयार हो गया। विहार के निर्माण में नौ करोड़ की राशि का व्यय हुआ। जब शास्ता चारिका करते हुएश्रावस्ती आये, तब विशाखा ने उन्हें चातुर्मासिक-प्रवास के लिए प्रासाद मे निमन्त्रित किया। विशाखा ने चार मास तक बुद्ध तथा भिक्षु-संघ को भिक्षा दान किया। अन्तिम दिव पर संघ को चीवर-शाटिका प्रदान किये तथा पात्र भर कर भैषज्य (घी, गुड़ आदि) का दान किया। एक नारी और मिथ्या दृष्टि वाले निर्ग्रन्थी परिवार में रहते हुए उनका महादान प्रशंसनीय कर्म कहा गया है। शास्त्रा द्वारा समय-समय पर विभिन्न संघ उत्सवों में विशाखा को शासन देकर सम्प्रहर्षित किया गया जिससे वे बुद्धत्व प्राप्ति के सहायक धर्मो अर्थात् पारमिताओं (जैसे दान-पारमिता, शल-पारमिता, नैष्क्रम्यपारमिता, प्रज्ञा-पारमिता, क्षान्ति-पारमिता, सत्य पारमिता आदि) का दृढ़ता से पालन करती हुई संघ में आदरणीय स्थान पा सकी।

विशाखा बुद्ध और भिक्षुसंघ के प्रभाव (ऋद्धि-बल) से आश्चर्य चकित होकर, तथागत की महद्धिकता (महात्म्य) की स्तुति और वन्दना करती थी। उन्होनें अपना सम्पूर्ण जीवन संघ के कार्यों में व्यतीत किया।

विशाखा ने तथागत (बुद्ध) से संघ के कल्याण के लिए आठ-वरों कीयाचना की। तथागत ने कहा कि वे इन वरों से दूर हो चुके हैं। विशाखा ने पुनःकहा कि ये कल्प्य तथा निर्दोष वर हैं। बुद्ध की स्वीकृति पाकर उन्होंने कहा कि वे यावज्जीवन संघ को वर्षा की वार्षिक साटिका देना चाहती हैं, क्योंकि निर्वस्त्र रहना उचित नहीं है। उन्होंने जीवनपर्यन्त नवागन्तुक भिक्षुओं, गमिक (प्रस्थान करने वाले) भिक्षुओं, रोगी, रोगी परिचारक को भोजन तथा औषधिदान करना चाहती हैं। उनके अनुसार भिक्षाचार करते हुए समय तथा श्रम की बचत होगी जिससे उनकी धार्मिक परिचर्या में विध्न नहीं होगा। रोगी को सेवा तथा समय पर औषधि न मिलें तो मृत्यु की सम्भावना बढ़ जाती हैं उनके द्वारा प्रदत्त भोजन यवागू और औषधि-दान भिक्षुओं के जीवन के लिए अत्यन्त हितकारी होगा। तथागत ने विशाखा से प्रश्न किया कि तुम्हें इन वरों में किस विशेष गुण की उपलब्धि दृष्टिगत हो रही है? विशाखा स्रोतापत्ति-फल को प्राप्त कर चुकी थी। बोध्यंग (ज्ञान के अंग) जैसे स्मृति-बोध्यंग, धर्मविचय-बोध्यंग, वीर्य-बोध्यंग, प्रीति-बोध्यंग, प्रश्रब्धि-बोध्यंग को क्रमशः व्यावहारिक जीवन में सार्थक करती हुई, बुद्ध-शासन से कृतकृत्य हो वह उपासिकाओं में अपना महनीय स्थान बना चुकी थी अतएव वे कहती है कि इसके द्वारा उनके चित्त में प्रमोद होगा, प्रमोद से प्रीति होगी, तथा प्रीति से काया (अहं) शान्त होगा, अहं की शान्ति से सुखी होकर, चित्त समाधि की अवस्था को प्राप्त होगा। इन सारी प्रक्रिया में ही मेरी इन्द्रिय-भावना, बल-भावना और बोध्यंग भावना होगी। इस प्रकार हम कह सकते है। कि विशाला चित्त प्रसादन की अवस्था में बोध्यंग के सात अंगों की निरन्तर भावना रखकर समाधि बोध्यंग की स्थिति पाकर जीवन को

सफल करना चाहती थी। तथागत ने विशाखा के इन विचारों को समझकर उनकी प्रशंसा की। तथागत ने भिक्षु–संघों को आंमत्रित कर उन आठ कार्यो की अनुमति प्रदान की।

विनय पिटक महावग्ग में कहते हैं कि विशाखा एक बार बुद्ध के समीप गई, अभिवादन के पश्चात् उन्होंने एक मुँह पोंछने का वस्त्र, शास्ता को दिया तथा कहा कि आप इसे स्वीकार करें, यह मेरे चिरकालिक हित सुख के लिए होगा। बुद्ध ने उसे ग्रहण कर धार्मिक बुद्ध शासन से सम्हर्षित किया। इस प्रकार बुद्ध के सुयोग्य उपासक और उपासिकाओं ने अपने उत्सर्ग, निःस्वार्थ सेवा, अपने समर्पण तथा समुज्जवल साधना से स्वर्णिम इतिहास बनाये हैं।

सन्दर्भग्रन्थः

- विनयपिटक, अनु. राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, 1935
- थेरी गाथाएँ – भरतसिंह उपाध्याय, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 1950
- ललित विस्तर, पी.एल वैध, मिथिला इंस्टीट्यूट, दरभंगा, 1958
- महावंश, अनु. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2016
- आधुनिक हिन्दी साहित्य पर बौद्ध प्रभाव, जगदीश कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1981
- आदर्श बौद्ध महिलायें, कुमारी विद्यावती श्मालविकाश, भारतीय शाक्य परिषद्, फर्रुखाबाद
- थेरी गाथा, सम्पा० विमलकीर्ति, सम्यक् प्रकाशन, 2006
- पालि साहित्य का इतिहास, भरतसिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2000

* * *

अथर्ववेदीय ऋषिकाओं का परिचय

कृष्णकान्तसरकार
शोध छात्र
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

वैदिक काल में पुरुष ऋषियों के साथ-साथ स्त्री-ऋषि भी मन्त्रद्रष्टा होते थे। वैदिक स्त्री ऋषियों को ऋषिका के नाम से जाना जाता है। ऋषिकाओं ने अनेक विषयों से सम्बन्धित मन्त्रों का दर्शन किया है। वेदार्थ को समझने के लिये ऋषि/ऋषिका का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये अथर्ववेदीय ऋषिकाओं का परिचय उपलब्ध करना आवश्यक समझा है। अथर्ववेद में पांच ऋषिकायें हैं। इनके विषय में वैदिकसंहिता, अनुक्रमणी साहित्य और वेदभाष्यकारों ने उल्लेख किया है।

कूटशब्द - ऋषि, ऋषिका, सूर्यासावित्री, मातृनामा, इन्द्राणी, देवजामय, सार्पराज्ञी, विनियोग।

ऋ-गतौ[1] धातु से 'इगुपधात् कित्'[2] सूत्र द्वारा इन् प्रत्यय करके 'ऋषिः' शब्द सिद्ध होता है। गति के तीन अर्थ होते हैं। यथा- ज्ञान, गमन और प्राप्ति। जो ज्ञान के अन्तिम पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेता है, वह ऋषि कहलाता है। आप्टे कोश में ऋषि शब्द के दो अर्थ किये हैं- पहला अर्थ अन्तःस्फूर्त कवि या मन्त्रद्रष्टा तथा दूसरा अर्थ पुण्यात्मा मुनि, सन्यासी और योगी।[3] कात्यायन ने ऋषि को परिभाषित करते हुए कहा है 'यस्य वाक्यं स ऋषिः।'[4] यास्क ने भी निरुक्त में ऋषि विषयक चर्चा की है। यास्क के अनुसार जो सूक्ष्म दृष्टि से मन्त्रार्थ को जानता है, वह ऋषि है।[5] यास्क का कहना है कि ब्रह्म ने स्वयं तपस्या करने वाले ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया है, यही ऋषियों का ऋषित्त्व है।[6] सायण ने 'ऋषि' शब्द का अर्थ 'मन्त्रद्रष्टा'[7] या 'सूक्तद्रष्टा'[8] कहा है। शतपथब्राह्मण में ऋषि को ज्ञाता,[9] विद्वान[10] तथा प्राण[11] कहा गया है। ऋषियों ने ईश्वरीय ज्ञान को मानव कल्याण हेतु संहिताबद्ध किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि ऋषि मानव तथा देवताओं के मध्य एक ऐसा जीवन्त माध्यम है, जिससे मानव वेदार्थ का ज्ञान प्राप्त कर देवत्व को प्राप्त कर सकता है।

वौदिक काल में ऋषियों के साथ-साथ ऋषिकाएँ भी मन्त्रार्थ का दर्शन करके ऋषि, ब्रह्मवादिनी, मुनि और ऋषिका आदि विशेषणों से विभूषित हुआ करती थीं। आर्षानुक्रमणी में शौनक ने ऋषिकाओं को गोधा, घोषा, विश्ववारा, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया, इन्द्राणी, सरमा, उर्वशी आदि

ऋषिकाओं को ब्रह्मवादिनी के नाम से अभिहित किया है।[१२] आर्षानुक्रमणी में ऋषिका को 'मुनि:' भी कहा है।[१३] संस्कृत में ऋषि: शब्द उभय लिङ्ग शब्द है, अत: विभिन्न अनुक्रमणी साहित्यकारों ने तथा वेदभाष्यकारों ने भी स्त्री ऋषियों के लिये ऋषि शब्द का ही प्रयोग किया है। स्त्री मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के लिये 'ऋषिका' नाम का उल्लेख ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी की टीका वेदार्थदीपिका में पाया जाता है।[१४] सायण ने भी स्त्री मन्त्रद्रष्टा ऋषिओं के लिये ऋषिका शब्द का प्रयोग किया है।[१५] हिन्दी भाषा में स्त्री ऋषियों के लिये ऋषिका शब्द ही अधिक प्रयुक्त है, अर्थात् हिन्दी भाषा में ऋषिका पद केवल स्त्री ऋषियों को ही बोध कराता है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में ही मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं की संख्या लगभग २४ है और इन ऋषिकाओं के द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या लगभग २२४ है। अथर्ववेद में मन्त्र द्रष्टा ऋषिकाओं की संख्या ५ है और इन ऋषिकाओं के द्वारा दृष्टमन्त्रों की संख्या लगभग १९८ हैं। इस प्रकार वैदिक ऋषिकाओं के द्वारा दृष्ट मन्त्रों की कुल संख्या ४२२ है। अथर्ववेद संहिता में स्थान पाने वाली ऋषिकाओं का परिचय को ही इस शोधपत्र का विषय बनाया गया है।

अथर्ववेद की ऋषिकाएँ, दृष्ट सूक्त और मन्त्र संख्या-

ऋषिका	**सूक्त-सन्दर्भ**	**मन्त्र संख्या**
१. सूर्यासावित्री[१६]	१४.१,२	१३९
२. मातृनामा[१७]	२.२, ४.२०, ८.६	४०
३. इन्द्राणी[१८]	२०.१२६	११
४. देवजामय[१९]	२०.९३	५
५. सार्पराज्ञी[२०]	२०.४८	३

ऋषिकाओं के द्वारा दृष्ट सूक्तों तथा अनुक्रमणी साहित्यों में अथर्ववेद की ऋषिकाओं का सामान्य परिचय उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न वेद भाष्यकारों ने वैदिक ऋषि तथा ऋषिकाओं के विषय में कुछ संकेत उद्धृत किये हैं। अर्थववेद के पाँच मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाएँ हैं। यथा- सूर्यासावित्री, देवजामय, इन्द्राणी, सार्पराज्ञी तथा मातृनामा। उक्त पाँच ऋषिकाओं में से मातृनामा ऋषिका को छोड़कर अन्य चार ऋषिकाएँ ऋग्वेद के भी मन्त्रद्रष्टा हैं। अथर्ववेद के ऋषिकाओं का सामान्य परिचय निम्नवत् है-

सूर्यासावित्री-

अर्थववेद के १४वे काण्ड में दो सूक्त (१४.१,२) उपलब्ध होते हैं। उक्त दोनों सूक्तों के मन्त्रद्रष्टा ऋषिका सूर्यासावित्री हैं।[२१] यह ऋषिका ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ८५वां सूक्त का भी मन्त्रद्रष्टा है।[२२] सायण ने इस सूक्त का विनियोग विवाह के लिये बताया है।[२३]

वेदार्थदीपिका में सूर्यासावित्री को सविता की पुत्री बताई गई है।[२४] सायण ने भी सूर्यासावित्री को सविता की पुत्री माना है।[२५] सूर्यासावित्री ऋषिका स्वयं देवता भी है। सूर्यासावित्री के द्वारा दृष्ट इस सूक्त को विवाह सूक्त के नाम से जाना जाता है। इस सूक्त में सोम-सूर्या का विवाह तथा विवाह विधियों और परिवार के सभी सदस्यों के कर्तव्यों का वर्णन प्राप्त होता है।

मातृनामा ऋषिका-

अथर्ववेद में मातृनामा ऋषिका के द्वारा दृष्ट तीन सूक्त उपलब्ध होते हैं।[२६]

(क) द्वितीय काण्ड के द्वितीय सूक्त है, जिसमें गन्धर्वब्रह्म का वर्णन है।[२७] सायण ने इस सूक्त का विनियोग 'अश्वमेध यज्ञ में अश्व की अनुमन्त्रणा' के लिये बताया है।[२८]

(ख) चतुर्थकाण्ड के बीसवां सूक्त में 'मातृनामा' नामक औषधी का वर्णन प्राप्त होता है, जिससे दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है। सायण ने इस सूक्त का विनियोग 'ब्रह्मग्रहादि जनित भय निवृत्ति' के लिये बताया है।[२९]

(ग) अष्टम काण्ड के छठा सूक्त भी मातृनामा ऋषिका के द्वारा दृष्ट है। इस सूक्त में गर्भ ध ारण करने वाली माताओं के गर्भसंरक्षण के उपायों का वर्णन प्राप्त होता है। सायण ने इस सूक्त का विनियोग 'भूत-शान्तियज्ञ' के लिये बताया है।[३०]

मातृनामा ऋषिका के द्वारा दृष्ट मन्त्र केवल अथर्ववेद में ही उपलब्ध होते हैं। इस ऋषिका के विषय में अथर्ववेद बृहत्सर्वानुक्रमणी में केवल नामोल्लेख मात्र मिलता है। इससे अधिक परिचय उपलब्ध नहीं होता है।

इन्द्राणी ऋषिका-

अथर्ववेद के बीसवें काण्ड का १२६वां सूक्त के ११मन्त्रों की ऋषिका इन्द्राणी है।[३१] यह सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल में भी उपलब्ध होता है।[३२] सायणाचार्य ने इस सूक्त का विनियोग 'माध्यन्दिन सवन' के लिये बताया है।[३३]

इन्द्राणी ऋषिका स्वयं इस सूक्त का देवता भी है। इस सूक्त में इन्द्राणी ने स्वयं को रूपवती स्त्री और मरुतों का सखा कहकर अपना परिचय दिया है।[३४] आर्षानुक्रमणी में ११ मन्त्रों के द्रष्टा इन्द्राणी ऋषिका को पुलोम ऋषि की पुत्री बताई गई है।[३५] इस सूक्त में इन्द्र, इन्द्राणी और वृषाकपि देवता का वर्णन और इन देवताओं का संवाद उपलब्ध होता है।

देवजामय-

अथर्ववेद के बीसवें काण्ड के ९३वें सूक्त के (४,५,६,७,८) ५पांच मन्त्रों की ऋषिका देवजामय है।[३६] यह सूक्त ऋग्वेद के १०वें मण्डल में भी उपलब्ध होता है।[३७] सायण ने इस सूक्त का विनियोग 'प्रात:सवन महाव्रत' के लिये बताया है।[३८]

अथर्ववेद- बृहत्सर्वानुक्रमणी में इन्द्राणी ऋषिका को 'इन्द्रमातर:' कहा गया है।[३९] वेदार्थदीपिका में देवजामय को देवताओं की भगिनी कहा है।[४०] 'देवजामय:' शब्द बहुवचनात्मक होने के कारण आर्षानुक्रमणी में देवजामय को 'इन्द्रस्य मातर:' कहा गया है।[४१] इनके व्यक्तिगत नामों का उल्लेख नहीं मिलते हैं। इसी कारण इन ऋषिकाओं को अज्ञातनामा ऋषिका के नाम से जाना जाता है। वेंकटस्वामी ने भी देवजामय को इन्द्र की माताएँ माना है।[४२] देवजामय इन्द्र की माता है या माताएँ हैं, यह स्पष्ट नहीं होता है। देवजामय के विषय में यह कहा जा सकता है कि एकाधिक ऋषिकाओं ने इन्द्र देवता से सम्बन्धित मन्त्रद्रष्टा थी। इस सूक्त में इन्द्र देवता के विषय में वर्णन उपलब्ध होता है।

सार्पराज्ञी ऋषिका-

अथर्ववेद के २०/४८वां सूक्त के अन्तिम तीन मन्त्रों के ऋषिका सार्पराज्ञी है। यह सूक्त अथर्ववेद के षष्ठ काण्ड में भी उपलब्ध होता है। षष्ठ काण्ड में उपलब्ध सूक्त का ऋषि उपरिबभ्रव है।[४३] अथर्ववेद का यह सूक्त ऋग्वेद के १०वें मण्डल में भी उपलब्ध होता है।[४४] ऋग्वेद में उपलब्ध इस सूक्त का ऋषिका सार्पराज्ञी है।[४५] अथर्ववेद-बृहत्सर्वानुक्रमणी में सार्पराज्ञी ऋषिका के द्वारा दृष्ट सूक्त को खिल सूक्त बताया है।[४६] सायण ने इस सूक्त का विनियोग 'अविवाक् अहनि में मानस-ग्रह' के लिये बताया है।[४७]

इस सूक्त का देवता सूर्य है।[४८] आर्षानुक्रमणी में सार्पराज्ञी ऋषिका को 'मुनि' कहा है।[४९] ऋग्वेद-सर्वानुक्रमणी में सार्पराज्ञी ऋषिका को ही इस सूक्त का देवता बताया है।[५०] ऋग्वेद-सर्वानुक्रमण ी के टीकाकार षड्गुरुशिष्य ने भी सार्पराज्ञी को ही इस सूक्त का देवता माना है।[५१] बृहद्देवता के अनुसार इस सूक्त में सार्पराज्ञी ऋषिका की आत्मस्तुति है।[५२] सायण ने भी इसी बात को माना है।[५३] ऋग्वेद-सर्वानुक्रमणी तथा ऋग्वेद-सायण ने सार्पराज्ञी ऋषिका को इस सूक्त का देवता भी माना है।[५४] इस प्रकार सार्पराज्ञी ऋषिका के विषय में सामान्य परिचय उपलब्ध होता है।

वेदार्थ ज्ञान के लिये ऋषि का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि मन्त्र या सूक्त के ऋषि का ज्ञान होने के पश्चात् देवता का ज्ञान होता है और कुछ सूक्तों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि ही उस सूक्त का देवता भी होते हैं। अत: ऋषि को जानने के अनन्तर ही मन्त्र या सूक्त का अध्ययन करना चाहिए। ऋषि के ज्ञान के विना यज्ञादि निष्फल होता है।[५५] ऋषित्व ज्ञान के विना श्रौत तथा स्मार्त कर्म की सिद्धि नहीं होती है।[५६] ऋषि तथा देवतादि ज्ञान के विना वेदमन्त्र का अध्ययन, अध्यापन तथा जाप करने से पाप का भागी होता है।[५७] वेदार्थदीपिका में ऋषि छन्दादि के ज्ञान के विना वेदाध्ययन को 'मन्त्रकंटक' कहा है।[५८] अन्ततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि वेदादि शास्त्रों के अध्ययन के लिये ऋषि का ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

उक्त ऋषिकाओं के परिचय से यह भी ज्ञात होता है कि वैदिक काल में पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियाँ भी वेदाध्ययन करती थीं। वेदाध्ययन में स्त्रियों का किसी प्रकार निषेध नहीं था। देवताओं से सम्बन्धित मन्त्रों के द्रष्टा होने के साथ–साथ सामाजिक विषय से सम्बन्धित मन्त्रों का भी दर्शन किया है। सूर्यासावित्री ऋषिका समाज से सम्बन्धित मन्त्रों के द्रष्टा होकर आदर्श मानव समाज निर्माण करने का सन्देश दिया है। इन्द्रानी, सार्पराज्ञी, देवजामय और मातृनामा आदि ऋषिकायें देवता समन्धित मन्त्रों की द्रष्टा रही है। इन ऋषिकाओं द्वारा दृष्टसूक्त एक साधारण मानव को देवत्त्व प्राप्त करने का सन्देश देता है। इस प्रकार वैदिककाल के नारियों की तपस्या और चिन्तन–चरित्र में शुद्धता का दृष्टान्त वर्तमान मानव समाज को आदर्श मानव समाज निर्माण में विशेष सहायक सिद्ध होता है।

सन्दर्भः-

1. धातुपाठ भ्वादिगण
2. उणादिसूत्र. ४.१२०
3. अमरकोश. पृ. ९२४
4. ऋक्सर्वानुक्रमणी–१
5. ऋषिर्दर्शनात्। निरुक्त २.३
6. तद्यदेनांस्तपस्यमानान ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्त्वम् इति विज्ञायते। निरुक्त २.३ पृ. ८५
7. ऋषिरतीन्द्रियद्रष्टा।। ऋग्वेदसंहिता. ९.८७.३ पृ. १७७
8. ऋषिः सूक्तद्रष्टा।। ऋग्वेदसंहिता ९.११.२ पृ. २६८
9. यो वै ज्ञातोऽनूचानः सः ऋषिः। शतपथब्राह्मण. ४.३.४.११
10. एते वै विप्रा यदृषयः। शतपथब्राह्मण. १.४.२.७
11. प्राणा उ वा ऋषयः। शतपथब्राह्मण ६.१.१.१ गौधा घोषा विश्ववाराऽपालोपनिषन्निषत्।
12. ब्रह्मजाया जुहूर्नामा अगस्तस्य स्वसादितिः
    इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशीर्वशी।
    लोपामुद्रा च नद्यश्च यमो नारी च शश्वती
    श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
    रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः ऋग्वेद आर्षानुक्रमणी. १०.१००, १०१, १०२
13. आयङ्गौरिति सूक्तस्य सार्पराज्ञी मुनिः स्मृतः। ऋग्वेद आर्षानुक्रमणी. १०.४८
14. देवजामयः। देवानां स्वसृभूता इन्द्रमातरो नामर्षिका। वेदार्थदीपिका. पृ. १६३
15. ऋग्वेद सायणभाष्य १०.१५३ पृ. ८३८

16. अथर्ववेदबृहत्सर्वानुक्रमणी. ९.१४
17. वहीं. २.२, २.२, ६.८
18. वहीं. पृ. १४२
19. वहीं. पृ.१३६
20. वहीं.
21. अथर्ववेदबृहत्सर्वानुक्रमणी. पृ. ९
22. ऋषिस्तु तापसो मन्युर्यस्ते मन्यविति द्वयोः।
    सत्येनोत्तभिता सूक्तं सूर्यासावित्रीत्यार्षं तत्।। ऋग्वेद आर्षानुक्रमणी. १०.३३
23. ऋग्वेदसायणभाष्य. १०.८५ पृ. ५७३
24. सूर्यानामर्षिका सवितृसुता। वेदार्थदीपिका. पृ. १५५
25. सप्तचत्वारिंशदृचं प्रथमं सूक्तं सवितृसुतायाः सूर्याया आर्षम्। ऋग्वेदसायणभाष्य. १०.८५ पृ. ५७२
26. अथर्ववेद संहिता. २.२, २.४, ६.८
27ण मातृनामाऽनेन सूक्तेन मन्त्रोक्ता गन्धर्वाप्सरसो देवता अस्तौत। अथर्ववेदबृहत्सर्वानुक्रमणी. पृ. २
28. अश्वमेधे 'दिव्यो गन्धर्व' इत्यनया ऋचा ब्रह्मा संवत्सरान्ते युज्यमानम् अश्वम् अनुमन्त्रयेत्।. २.२ पृ. १९९
29. आ पश्यति इति सूक्तेन ब्रह्मग्रहादिजनितभय निवृत्तये त्रिसंध्यामणि संपात्य अभिमन्त्र्य बन्धीयात्। अर्थवेदसायणभाष्य ४.२० पृ. ६१९
30. मातृगणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणाद्भुतहोमशान्तिहोमादौ गणप्रयुक्तो विनियोगोवगन्तव्यः। अर्थवेदसायणभाष्य ८.२० पृ. ६३५
31. अथर्ववेदबृहत्सर्वानुक्रमणी. पटल.११ पृ. १४२
32. ऋग्वेद संहिता. १०.८६
33. ब्राह्मणाच्छंसी माध्यान्दिने सवन आराम्भणीयाभ्य ऊर्धमेत्सूक्तं शंसेद्। ऋग्वेदसायणभाष्य. १०.८६ पृ. ५८८
34. उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा..। ऋग्वेदसंहिता. १०.८६.९
35. एकादशानां शिष्टानामिन्द्राणी सा पुलोमजा। ऋग्वेदआर्षानुक्रमणी. १०.३७
36. ईखयन्ती' पञ्च (४-८) देवजामय इन्द्रमातरः। अथर्ववेदबृहत्सर्वानुक्रमणी. पटल. ११ पृ. १३६
37. ऋग्वेद संहिता १०.१५४
38. महाव्रतेऽपि प्रातःसवनिके ब्रह्मशस्त्र एतत्सूक्तम्।। ऋग्वेदसायणभाष्य. १०.१५३ पृ. ८३८
39. देवजामय इन्द्रमातरः। अथर्ववेदबृहत्सर्वानुक्रमणी. पटल. ११ पृ. १३६
40. देवजामयः। देवानां स्वसृभूता इन्द्रमातरो नामर्षिकाः। वेदार्थदीपिका. पृ. १६३, ऋग्वेदसर्वानुक्रमणी. १०. १५३
41. इन्द्रस्यमातरो यास्ता ऋषयो देवजामयः। ऋग्वेदआर्षानुक्रमणी. १०.७८

42. देवजामयः इन्द्रमातरः। ऋग्वेदसायाणभाष्य. १०.१५३ पृ. ८३८
43. अथर्ववेदबृहत्सर्वानुक्रमणी.। ४ पटल
44. ऋग्वेदसंहिता. १०.१८९
45. आयङ्गौरिति सूक्तस्य सार्पराज्ञी मुनिः स्मृतः। ऋग्वेदआर्षानुक्रमणी. १०.९८
46. अथर्ववेदबृहत्सर्वानुक्रमणी. २०.४८
47. अविवाक्येऽहनि मानसग्रह एतत्सूक्तं शंसनीयम्। ऋग्वेदसायणभाष्य. १०.१८९ पृ. ८८४
48. सैव देवता सूर्यो वेति. ऋग्वेदसायणभाष्य. १०.१८९ पृ. ८८४
49. आयङ्गौरिति सूक्तस्य सार्पराज्ञी मुनिः स्मृतः। ऋग्वेदआर्षानुक्रमणी. १०.८९
50. आयं गौः आर्पराज्ञात्मदैवतं सौर्यं वा। ऋग्वेदसर्वानुक्रमणी. पृ. १०
51. सार्पराज्ञी नामर्षिका। आत्मदेवतम्। स्वदेवत्यं यथा तथापश्यत्। सूर्यदेवत्यं वा यथा तथापश्यत्। वेदार्थदीपिका. पृ.१६६
52. आयं गौरिति यत्सूक्तं सार्पराज्ञी स्वयं जगौ। बृहद्देवता. ८.१८९.३
53. सार्पराज्ञ्या आत्मस्तुतिः तदा सूर्यात्मना स्तुयत इत्यवगन्तव्यम्। ऋग्वेदसायणभाष्य. १०.१८९
54. आयङ्गौः सार्पसंज्ञात्मदैवतं सौर्यं वा। ऋग्वेदसर्वानुक्रमणी. १०.६४
55. नियमोऽयं जपे होमे ऋषिश्छन्दोऽथ दैवम्।
    अन्यथा चेत्प्रयुञ्जानः तत्फलाच्चात्र हीयते।। बृहद्देवता. ८.१३४
56. ऋग्वेदसर्वानुक्रमणी. पृ.१
57. अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
    यो अध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः।। बृहद्देवता. ८.१३६
58. ऋषिच्छन्दोदेवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि।
    अविदित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यते।। वेदार्थदीपिका. पृ. ५८

* * *

ऊर्मिलीयमहाकाव्य में ऊर्मिला का चरित्र-चित्रण

चिरञ्जीत सरकार
शोध छात्र
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ऊर्मिलीयमहाकाव्य के प्रणेता पण्डित नारायणशुक्ल हैं। इनका जन्म 1913 ई० उत्तरप्रदेश के देवरिया जिला के अन्तर्गत गौरा वार्ड नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने "उर्मिलीय महाकाव्य" के प्रत्येक सर्ग के अन्त में अपना परिचय दिया हैं, जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने गर्ग ब्राह्मण कुल में जन्मग्रहण किया था। इनके पिता कमलेश्वर शुक्ल तथा माता श्रीमती सिरताजि देवी थीं। महाकवि नारायण शुक्ल श्रीनाथ संस्कृतमहाविद्यालय हाटा देवरिया के प्रधान आचार्य भी रहे।

इनका ऊर्मिलीय महाकाव्य 17 सर्गों में विभक्त है। इस महाकाव्य का उपजीव्य काव्य वाल्मीकीय रामायण है। इस महाकाव्य का नायक लक्ष्मण तथा नायिका ऊर्मिला है। इसमें वीर रस प्रधान है। महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण से होता है। कवि ने आठ श्लोकों में मङ्गलाचरण किया है। इस महाकाव्य का प्रारम्भ निमि नामक राजा के वंश वर्णन से होता है जिसमें 24 वीं पीढ़ी में राजा जनक का जन्म होता है और अन्तिम 17 वें सर्ग में लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु और अंगद का राज्याभिषेक और प्रजापालन तक का वर्णन है। प्रस्तुत महाकाव्य की नायिका ऊर्मिला है। इसमें ऊर्मिला के महान चरित्र का वर्णन किया गया है। ऊर्मिला का त्याग यद्यपि सीता के त्याग से अधिक नहीं है किन्तु उससे कम भी नहीं है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैथिलि शरणगुप्त ने "साकेत" नामक महाकाव्य लिखा, जिसमें ऊर्मिला को नायिका के रूप में दिखाया गया है। उसी के अनुरूप महाकवि नारायण शुक्ल ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया है। वाल्मीकीय रामायण में जहाँ राम-सीता, लक्ष्मण-ऊर्मिला आदि चारों भाईयों की विवाह हो जाते है तत्पश्चात् ऊर्मिला को उपदेश देने की कोई बात नहीं आती है किन्तु 'ऊर्मिलीयमहाकाव्य' में कवि ने सीता की अपेक्षा ऊर्मिला को अधिक महत्त्व देते हुए ऊर्मिला को माता-पिता द्वारा धर्मशास्त्र मूलक एव व्यवहार मूलक उपदेश दिया है। यही बात राम, लक्ष्मण और सीता के वन जाते समय हुई है। उस समय भी वाल्मीकीय रामायण में ऊर्मिला से अनुमति मांगने अथवा लक्ष्मण द्वारा उपदेश देने की कोई बात नहीं है, किन्तु कवि ने यहाँ अपनी कला-कौशल से उस घटना को एक सर्ग में निबद्ध किया है और लक्ष्मण द्वारा ऊर्मिला को उपदेश दिया गया है।

ख. महाकाव्य में चित्रित ऊर्मिलाः-

ऊर्मिला राजा जनक एवं सुनयना की पुत्री लक्ष्मण की पत्नी एवं राजा दशरथ की पुत्रवधू है। जन्म के 12 वें दिन जातकर्म संस्कार किया गया एवं आनन्द की लहरों को धारण करने वाली उस सुकुमारी का नाम ऊर्मिला रखा गयाद्य

१. आलौकिक सौन्दर्यः-

ऊर्मिला सर्वगुणसम्पन्ना एवं अलौकिक सौन्दर्य वाली राजकुमारी थी। कवि कहते हैं कि वह इतनी सुन्दर थी कि उसके मुख की कान्ति से चन्द्रमा भी तिरस्कृत हो जाय। कमल भी उसके अप्रतिमसौन्दर्य को देखकर लज्जा से संकुचित हो जाता है, और वह अपने केशों की कालिमा से भ्रमरों को भी जीत लिया है।

उसकी दन्त की पंक्तिया सुन्दर सघन एवं अत्यन्त निर्मल थी। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जिससे उसकी तुलना की जा सके। इस संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो उसे देख कर दुःख से मुक्त न हुआ हो। यहाँ तक की स्वर्ग के देवताओं ने भी उसे देखकर दुःख से मुक्त हो जाते थे।

युवावस्था में विद्यमान ऊर्मिला और लक्ष्मण का प्रेम ऐसी स्थिति में था, जिसे आज से पूर्व नहीं देखा गया था। लक्ष्मण के साथ रहती हुई ऊर्मिला शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कान्ति को भी जीत लिया।

२. विलक्षण प्रतिभाः-

विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न ऊर्मिला दो-तीन वर्ष में ही वेद-वेदांग आदि शास्त्रों में एवं 64 प्रकार की कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली थी ।

अपने रूप दया-दाक्षिण्य आदि गुणों से, विद्या से एवं मधुर वचनों से माता-पिता आदि गुरुजनों की आज्ञा पालन करती हुई अतिशीघ्र ही विद्वानों में ख्याति भी प्राप्त कर ली थी।

इसका स्पष्ट दर्शन नवमसर्ग में होता है, जब ऊर्मिला भी वन जाने की इच्छा करती हुई लक्ष्मण को नीति शास्त्रोक्त वचनों से एवं व्यवहारिक दृष्टि से समझाती है कि एक पत्नी का परम धर्म यही है कि वह सुख-दुःख में पति के साथ ही रहे।

३. माता-पिता का उपदेशः-

पञ्चमसर्ग में ऊर्मिला का विवाह हो जाने पर विदाई के समय पिता जनक पुत्री ऊर्मिला को उपदेश देते हुए कहते है कि हे ऊर्मिले! तुम अपनी बहनों के साथ सुखी रहना। दीर्घायु वाले अतिशय प्रेम युक्त, चारित्र्य, यश, शान्ति, दान, आदि में व्यस्त रहने वाले, पुरुषों में श्रेष्ठ पति के प्रेम को धारण करती हुई वंशोन्नति करना।

जो चरित्र रूपी चन्द्रमा की किरणों से युक्त स्त्री का सतित्व होता है, वही परिजनों एवं कुटुम्बादि की भी रक्षा करता है। सतीत्व के बिना समाज और राष्ट्र कभी सुशोभित नहीं होता, इस संसार में सतीत्व के समान कोई और धर्म नहीं है। इसलिये हे पुत्री! तुम सतीत्व को प्राप्त करो।

३.१. धर्म की ओर प्रवृत्तः-

पिता जनक पुत्री ऊर्मिला से कहते हैं कि हे ऊर्मिले! तुम सदैव धर्म का पालन करने वाली बनों, और अधर्म से सदैव दूर रहना । सास की प्रिय बनो, पति से अत्यधिक प्रेम करने वाली बनो, मधुर भाषी, सेवकों पर दया दृष्टि रखने वाली बनों। क्रोध में भी गुरुजनों के विरुद्ध न जाना, पति द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर भी प्रतिकूल आचरण मत करना।

माता-पिता की सदैव सेवा करना उनके आदेशों का पालन करना, उनके प्रति सदैव विनम्र भाव रखना।

४. शुभाशुभ को मानने वालीः-

जब लक्ष्मण वन जाने के लिए ऊर्मिला से विदा लेने जाते हैं, तो उससे कुछ क्षण पूर्व ऊर्मिला की दाहिनी आँख फड़कने लगती है, जिसे वह कुछ अशुभ होने का संकेत मानती है। इसलिए वह वाँयी आँख को सम्बोधित करती है कि वह जल्दी से फड़के और शुभ संकेत दे।

५. दानशीलताः- ऊर्मिला मन ही मन सोचती है कि उसके सामने यदि राम का राज्याभिषेक होता है तो वह ब्राह्मणों की पूजा करेगी और फल आदि पदार्थ एवं दूध देने वाली गायों को प्रदान कर उन्हें प्रसन्न करेगी।

लक्ष्मण ऊर्मिला से कहते हैं कि तुम वेद विहित धर्म, स्मृति सम्मत आचरण का पालन करने वाली हो, तुम्हारी जैसी सती स्त्रियों के हृदय में धर्मपरक नीतियाँ सदैव निवास करती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सबप्रकार से पति का कल्याण करने वाली तुम समस्त स्त्रियों की आदर्श स्वरूपा हो, जो धर्म के मार्ग पर चलने वाली तुम्हारे पदचिह्न का ही अनुकरण करती है

६. राष्ट्रप्रेमीः-

लक्षण द्वारा ऊर्मिला से वन जाने की अनुमति मांगने पर ऊर्मिला कहती कि वह लक्ष्मण को वन जाने की आज्ञा नहीं दे सकती, क्योंकि राम जब पिता दशरथ से आज्ञा मांगने जायेंगे तो हो सकता है कि पिता का हृदय टूट जाय और वह अश्वस्थ भी हो जाए, इसके पश्चात् लक्ष्मण का भी वन जाने पर राज्य स्वामी विहीन हो जायगा, जिससे राज्य में लूट-पाट की घटना अत्यधिक बढ़ सकती है। जिससे राज्य में अशान्ति फैल सकती। इस कथन से ऊर्मिला का राष्ट्र प्रेम स्पष्टरूप से परिलक्षित होता है।

७. सुख-दुःख में पति का साथ ना छोड़ने वालीः-

लक्ष्मण कहते है नीतिशास्त्र के वैदुष्य को धारण करने वाली हे ऊर्मिले! राष्ट्रकल्याण के लिए तुम्हारे द्वारा जो दु:ख और विपत्तियों की चर्चा की गयी है, वह सही ही है। और कहते हैं कि हे प्रिये! तुम इस राजभवन में ही सुखपूर्वक निवास करते हुए सतियों के गुण एवं महान चरित्र को सदैव याद रखना और उसी के अनुरूप भी कार्य करना। प्रियजनों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करना, पीडितों के प्रति दया का भाव रखना, गुरुजनों की सेवा सत्कार करना। साथ ही पुण्यात्मा, राजाओं के प्रति द्रोह का भाव कभी न लाना।

ऊर्मिला भी वन जाने की इच्छा करती हुई कहती है– सीता अपने पति के साथ वन जा रही है, हे नाथ! मैं भी आपके साथ चलती हुई घास, कुश आदि से ढके हुए मार्ग का अनुकरण करूंगी। वह कहती है कि जिस प्रकार लक्ष्मी के साथ भगवान विष्णु इस संसार का पालन करते हैं, सरस्वती के साथ ब्रह्मा भी इस विश्व को धारण करते तथा पार्वती के साथ शिव विश्व का संहार करते हैं, वैसे ही मैं भी आपके साथ रहकर सुख–दु:ख का भागीदार बनूंगी। यदि आपका साथ नहीं है तो ऐसी ऐसी स्थिति में केवल हाथों के द्वारा अपनी रक्षा कैसे हो सकती है।

तर्क का साहारा लेकर कहती है हे नाथ! कुश कण्टकों के ऊपर होने वाले गति के आगे मैं उचित–अनुचित का विचार करती हुई पैर रखूंगी। आपके साथ रहती हुई वन में भी मैं प्रसन्न रहूंगी और आप भी मेरे साथ रहकर प्रसन्न रहोगे। प्राय: देखा जाता है कि कोई भी व्यक्ति अपने स्वजनों के द्वारा कठिन से कठिन सुख–दु:ख को बाँटकर सुखी हो जाता है। इस प्रकार चतुर व्यक्ति अफवाह और कलङ्क से दूर हो जाता है।

८. सतीत्व के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञा:–

ऊर्मिला वन जाने की इच्छा प्रकट करती हुई सती स्त्रियों की शक्ति का उदाहरण देती है– जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को दूर करते हुए प्रकाशित होता है, चन्द्रमा कुमुदियों को विकसित करता है, अग्नि प्रज्वलित होता है, उसी प्रकार एक सती स्त्री भी पुण्य का पोषण करती हुई ओजस्विनी होती रहती है।

जो शुम्भ, निशुम्भ आदि दुष्ट ऋषि–महर्षियों को पीडित करते थे और जिन्होंने इन्द्र को भी जीत लिया था, ऐसे दुष्टों को पार्वती ने यमलोक पहुँचा दिया था।

सती स्त्री यदि चाहे तो वह अपनी शक्ति से ब्रह्म की सृष्टि के अतिरिक्त अन्य अभिनव सृष्टि का सर्जन भी कर सकती है, सति स्त्रियों में एक अद्भुत् शक्ति छुपी रहती है, जिसे स्वयं ब्रह्मा भी नहीं मिटा सकते।

सावित्री अपने पतिव्रत के बल पर मृत्यु के मुख से अपने पति सत्यवान को वापस लौटा लिया था। सती स्त्रियों की शक्तियों का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है। इस कथन से ऊर्मिला का सतीत्व के प्रति दृढ प्रतिज्ञा परिलक्षित होती है।

ऊर्मिला एक आदर्श नीति का उदाहरण देकर कहती है कि पति को अपनी स्त्री के साथ सदैव रहना चाहिए।

पति के साथ रहते हुए भयानक जंगल भी स्वर्ग जैसा सुखदायी होता है। पहाड़ से निकली हुई नदियाँ अपने शीतल जल से आह्लादित करती है, पशु-पक्षी भी मित्रवत् व्यवहार करते है।

इस प्रकार नीति शास्त्रोक्त वचनों से समझाती हुई ऊर्मिला वन जाने की जीद करती है। लक्ष्मण भी धर्म का उपदेश, नीति शास्त्रोक्त वचनों से ऊर्मिला को समझाते हैं। और अन्त में विविध प्रकार से लक्ष्मण द्वारा समझाने के पश्चात् ऊर्मिला वन जाने की स्वीकृति देती है।

९. **सर्वस्य त्यागीः-**

दशम सर्ग में जब लक्ष्मण का मूर्च्छित होने का समाचार आकाशवाणी से सुनकर ऊर्मिला शोकसागर में डूब जाती है, मृगी के समान व्याकुल हो जाती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि उसने अपने जीवन में आज तक जो भी पुण्य अर्जित किया है, वह सब लक्ष्मण को देकर उसे जीवित करें।

इसके पश्चात् लक्ष्मण का जीवित होना, रावणवध आदि वृतान्त को अपने मन की शक्ति से जानकर ऊर्मिला अपने दुःखों को वैसे ही भूल जाती है, जिस प्रकार मयूरी बादल के गरजने पर सब कुछ भूल जाती है।

१०. **अगाधप्रेमः-**

राम, सीता और लक्ष्मण साकेत लौटने पर तथा अपने समीप पति लक्ष्मण को देख कर ऊर्मिला बहुत खुश होती है और अपने दोनों हाथ सिर पर लगा कर सम्मान एवं स्वागत करती है। वियोग काल में जो अश्रू उसे दुःखी करते थे आज वही आश्रू प्रेम रूप में परिणत होकर सुख प्रदान कर रहे थे।

जिस प्रकार कमलिनी चन्द्रमा का आश्रय पाकर प्रसन्न होती है अर्थात् खिल जाती है, उसी प्रकार लक्ष्मण रूपी चन्द्रमा का आश्रय पाकर ऊर्मिला का मुख प्रसन्नता से भर गया और वियोग की अग्नि मानो मिलन के आनन्द रस से परिपूर्ण सरोवर में स्नान करके शान्त हो गयी।

ऊर्मिला बीती बातों को याद करती हुई ईश्वर से प्रार्थना करती है कि हे नाथ! इस संसार में कोई भी स्त्री दुःखी ना हो जैसा दुःख मैंने सहन किया है, वैसा दुःख किसीको ना हो।

युवावस्था में विद्यमान ऊर्मिला और लक्ष्मण का अगाद प्रेम ऐसी स्थिति में था, जिसे आज से पूर्व नहीं देखा गया था। लक्ष्मण के साथ रहती हुई ऊर्मिला शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कान्ति को भी जीत लिया।

जिस प्रकार विद्युत और उसकी प्रभा को अलग नहीं किया जाता उसी प्रकार लक्ष्मण और ऊर्मिला भी एक दूसरे से अलग न होते हुए शिव–पार्वती के समान एक दूसरे में अनुरक्त होकर लम्बा समय व्यतीत किया।

१०. ऊर्मिला का नगर आदि दर्शनः-

इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत करने के पश्चात् भी सन्तान न होने से सन्तान की कामना से गुरु वशिष्ट के पास जाते हैं, इसके दो मास पश्चात् ऊर्मिला पहाड़, जंगल, नगर, तीर्थादि देखने की इच्छा करती है।

इसके पश्चात् ऊर्मिला ने उस दण्डकारण्य को देखा जहाँ पर हिरण घास खा रहे थे, कोई जुगाली कर रहे थे और कहीं भयाक्रान्त होकर उछल- कूद कर रहे थे। ऊर्मिला आकाश में बादलों को देखती है और बादलों की घर्षण से उत्पन्न बिजली को देख कर भयाक्रान्त हो जाती है एवं अपने पति लक्ष्मण को पकड़ लेती है।

इस प्रकार मनोहर दृश्यों का अवलोकन करके साकेत पुनरागमन करती है एवं माताओं को अपने भ्रमण का वृतान्त सुनाती है।

११. गर्भधारण एवं पुत्रोत्पन्नः-

कुछ दिन बाद ऊर्मिला गर्भधारण करती है, गर्भधारण करते ही राजभवन में मानो प्रसन्नता का खजाना मिल गया हो।

ऊर्मिला का गर्भधारण करने से ऊर्मिला का सुन्दर मुखमण्डल की कान्ति पीली होने लगी, स्तनों का अग्रभाग काला पड़ गया, अत्यन्त कृश कटिप्रदेश पीनता को प्राप्त हो गया। दश मास पश्चात् शुभ ग्रहों द्वारा देखे जाते हुए लग्न के स्वामी के तनुभाव में स्थित होने पर दशम गृह के अधिपति को उच्चस्थ ग्रह के द्वारा शुभ दृष्टि से देखे जाने पर रति को भी तिरस्कृत करने वाली ऊर्मिला ने पुत्रों को जन्म दिया।

१२. आदर्श माता के रूप में:-

राजमहल में प्रवेश करती हुई पुत्रवधू (चन्द्रकेतु की पत्नी) को देख कर ऊर्मिला उसी प्रकार प्रसन्न हो गयी, जिस प्रकार वर्षा काल में जल भर जाने से गंगा प्रसन्न होती है।

अपने पति, पुत्र एवं पुत्रवधू के साथ रहती हुई ऊर्मिला सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगी। यह सुखद दिन और रात उन दोनों के लिए मानो एक क्षण के लिए व्यतीत हो जाता है।

चतुर्दश सर्ग में अरुन्धती के गार्हस्थ जीवन के निगूढ़ तत्वों के उपदेश सुनकर ऊर्मिला चन्द्रमा के समान चमत्कृत हो गयी।

षोडशसर्ग में चारों ओर अपने पुत्र चन्द्रकेतु के यशोगान सुनकर ऊर्मिला उसी प्रकार प्रसन्न हो जाती है, जिस प्रकार वर्षाकाल में बादल गरजने पर मोर प्रसन्न होता है। अन्त में ऊर्मिला अपनी पुत्रवधू को उपदेश देती हुई कहती है कि हे पुत्रवधू! तुम अपने उत्तम आचरण से सती पद को प्राप्त करो, निरन्तर स्वधर्म का आचरण करना। मन और वचन से अधर्म का परित्याग करना तथा पति को ही परम देवता मानकर उसकी सेवा करना।

इस प्रकार अन्त में अपने पुत्रों के कार्यों की प्रशंसा करती हुई एवं पुत्र-बन्धुओं को विशेष प्रकार से सम्बोधित करके आशीर्वाद देती है।

सन्दर्भग्रन्थ-सूची

- मुसलगाँवकर, केशवराव, आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा, चौखम्बा विद्याभवन, 2004
- गुप्ता, पुष्पा, संस्कृत साहित्य का बृहत् इतिहास, इस्टर्न बूकस् प्रकाशन, 2011
- भवभूति, उत्तररामचरितम्, हंसा प्रकाशन, जयपुर 2018
- उपाध्याय,बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी,2001
- उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास, सप्तम खण्ड, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2000
- उपाध्याय, रामजी, आधुनिक संस्कृत साहित्यानुशीलनम्, संस्कृत परिषद् सागर विश्वविद्यालय, सागर, 1965
- उमाशङ्कर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, 2016
- कान्त, सूर्य, संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, ओरियण्ट लँगमैन, नई दिल्ली, 1972
- कुमार,कृष्ण, अलङ्कार शास्त्र का इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2010
- गेरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1967
- गोयल, प्रीतिप्रभा, संस्कृत साहित्य का इतिहास, राजस्थान ग्रन्थगार , जोधपुर,1999
- पाण्डेय, सत्यनारायण, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1975
- भार्गव, दयानन्द, आधुनिक संस्कृत साहित्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर,1987
- राय, विनयकुमार, संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1999
- शास्त्री, गौरीनाथ, लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1967
- शास्त्री, मङ्गलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1967

* * *

The Portrayal of Woman in Kālidāsa's Plays

Dr. Kamna Vimal Sharma
Assistant Professor,
Daulat Ram College, University of Delhi

Vāgarthāviva Samprktau Vāgartha Pratipattaye,
Jagatah Pitarau Vande Pārvatiparameśwarau[i]

The above quoted *śloka* is an evidence of Kālidāsa's faith in the inseparability of man and woman instead of being a mere *mangalācarana*. It is the greatest irony that in a country like India where even the God is *ardhanārīśwara* i.e. one with the Goddess, the woman has been reduced to the marginalized state of the Other[ii] and the Second Sex[iii] . It is said that *one is not born, but rather becomes a woman*[iv]. While the biological differences play a major role in this gender-segregation, patriarchy and orthodox bourgeois ideology are the real causes of translocating women to the receiving end of the biased oppressive society. The literature, religion, tradition - all are means to confining women to her oppressed state and to design her into the mould as desired by the patriarchal society. The same tendency of depicting women as *abalā* (helpless) or subordinate shows up acutely in the literary representations of women in the Sanskrit literature. Hence, a feministic analysis of Sanskrit literature and specially the masterpieces like *Abhijñānaśākuntalam* is necessary in order to ensure gender equality, independence and empowerment to women by questioning the conventional discriminating attitudes and by highlighting the issues faced by women and injustices done to the women.

Abhijñānaśākuntalam undoubtedly is a masterpiece by the great Indian poet Kālidāsa that provides a panoramic view and insightful understanding of the contemporary society. Swami Tathagatananda in his article *Abhijñānaśākuntalam - A Wonder Coming from a Land of Wonders* highlights the magnificence of the illustrious poet Kālidāsa and his widely acclaimed drama *Abhijñānaśākuntalam* with reference to many western scholars. Professor Sylvian Levi says - *The name of Kālidāsa dominates Indian poetry and epitomizes it brilliantly*[v]. Besides Levi, Arthur W. Ryder, Alexander Von Humboldt, Sir William Jones, Herder, Goethe,

Schlegel are some of the other western scholars who have appreciated Kālidāsa and his *Abhijñānaśākuntalam*[vi].

Kālidāsa's thorough understanding of the contemporary society and the large oeuvre of his compositions makes him the perfect representative of his times. All of his plays- *Mālavikāgnimitram, Vikramorvaśīyam and Abhijñānaśākuntalam* are women oriented plays with love, marriage and man-woman relationship being the themes, reflecting the social circumstances realistically and faithfully. While analyzing Kālidāsa's plays from the feministic perspective, the first thing that catches our attention is that Kālidāsa has employed a variety of appellatives and invocatives to address his women characters. These ways of addressal have specific meanings and connotations associated with them. They convey a great deal about the traits and characteristics found, admired or even imposed on women, the range and significance attributed to them by Kālidāsa, the gender roles assigned to them by society as well as Kālidāsa's attitude towards women's capabilities, freedom and thus, women emancipation.

Strī is the most common term for a woman, expressing simply femininity irrespective of her age, state, connection, skills or traits. But it conveys the sense of objectification - belonging to a man or subordinate to man conveying dependence, weakness and helplessness. . *Śakuntalā* is *parastrī* for *Dusyanta* and hence is untouchable or respectable. Besides, *strī* is considered naturally intelligent but in a negative sense- capable of scheming and deceiving –*strīnāmaśiksitapat tutvam-amānusīsu samdrśyate kimuta yah pratibodhavatyah*[vii].

Kālidāsa records the maiden woman or a daughter as *bālā, bālikā, vatsā, tanayā, dārikā,ātmajā, sutā, jātā, putrī, kumārī, yuvati, kanyā, duhitā, śiṣyā*, *tapasvini*, etc. The term dārikā needs a little clarification whether it refers to a daughter or a young grown-up girl –…*krīdantividyādharadārikodayavatināma*. To justify *Pururavā'*s attraction and *Urvaśī's* jealousy for Udayavati, it is better to accept it in the sense of a grown-up girl. It is confirmed by the terms bhartrdārikā and rajadārikā where the first parts express the kinship sense.

As a *kanyā, Śakuntalā is āsramalalāmabhutā* for her father i.e. the grace (*sobhā*) of her father's house, the bringer of fortune but she does not belong to him or his house – *artho hi kanyā parakīyaeva. She is a nyāsa* (mortgage) for him that belongs to someone else – *pratyarpita nyāsa ivāntaratmā*, thus, revealing the irony of a woman's life that she belongs to nowhere. It also has the connotation

of woman's being an asset to be mortgaged and handed over and in this way, objectification of the woman.

Kanva-duhitā Śakuntalā shoulders the responsibility of watering plants, nurturing animals, taking care of asrama and welcoming the guests – *idānimeva duhitāram Śakuntalāmatithi satkārāya niyujya*…gatah. Still she is considered a weakling- not fit for hard tasks by Dusyanta– *asādhudarsi khalu tatrabhāvan Kanva ya imāmāśrama dharma niyukte*. The usages like – v*rksasecanādeva pariśrāntam* – show the general patriarchal thinking of attaching femininity with weakness and incapability.

Kanva-śisyā Śakuntalā is not restricted in matters of marriage only. Her father has the responsibility of educating her i.e. instilling in her the age-old orthodox views regarding the superiority of man over woman – *Śuśrusasva gurūnkuru ... vāmāh kulasyādhayah*. This anuśāsana or education is, in fact, another evidence of men's way of subordination of women in all aspects of life.

As a sister, *Śakuntalā* as well as *Mālavikā* is *bhagini* – a liability to her brothers – *bhaginyāste mārgamādesaya*. *Śārangarava* can chide up *Śakuntalā* but does not support her or be there for her during her tough times. *kathamanena kitavena vipralabdhāsmi, yuyamapi mām parityajatha* – clearly expresses *Śakuntalā's* pain and sorrow on being dejected by her brothers. Their haste in washing their hands off her can not be justified in any sense even by Kālidāsa. But a woman does not shrink her liabilities and remains devoted to her people throughout her life. Śakuntalā is concerned about her *latā bhagini Vana-jyotsnā* even while she is going away – *esā dvayoryuvayorhaste niksepah.*

In the role of a beloved, Kālidāsa's heroine comes across as divine and perfect – the beauty personified. Being the *mugdhā* kind of nāyika, she is blessed with great expansion of body and propriety of the body structure. In awe of her beauty and grace, the nāyaka praises her as *tanvī, tanugātrī, sundarī, sarvāngasundarī, priyadarśanā,* etc. Her beautiful features and graceful manners then become appellatives for her – *sunayanā, mṛgalocanā, dīrghapāngā, sitāpangā, sakalenn-dumukhī, bhadrāmukhī, sārangāksī, sutanu, kamalalocanā, subruh, natabruh,* etc.

Dusyanta interprets *Śakuntalā's* docile nature as her cowardice – *bhīru alam gurujanabhayena*– to provoke her into a hasty relationship with him in her father's absence. While *Pururavā* tries to dismiss Queen Ausinari's suspicions as baseless, he addresses her as *bhīru – nāham punastathā tvayi yathā hi mām śankase*, *bhīru*

– indicating the one who is dubious without reason. But in – gatam bhayam bhīru surārisambhavam, the word *bhīru* highlights the fearful nature of the women. In this way, Kālidāsa has associated the weaknesses like fearfulness, cowardice and illogical doubtful nature with the femininity.

Kālidāsa once again emphasizes this negative sense of femininity when he uses –*abālā*- to refer to a *prositabhartṛkā* i.e. a deserted woman in absence of her lover or husband – *istapravāsajanitanyabālājanasya duhkhāni nunamatimātra suduhsahāni* – prophesizing *Śakuntalā's* future. While *abālā* gives the sense of helpless and oppressed woman, Kālidāsa has deliberately avoided using this term for any of his women characters in his plays. It highlights his faith in women's capabilities to survive without men against adversities. Here too, *Śakuntalā* and *Mālavikā* as well as the *Parivrājikā* manage to appear stronger and self-controlled when deserted by men or after their death.

While drawing the pen-portrait of a woman as a wife, Kālidāsa seems to be following the traditional canon dictated by ancient dramatists like Bharata but here, one gets to see various dimensions or shades of a woman. On the basis of the type of the matrimonial relationship, wives can be of many kinds. Queens Dhārini, Auśinarī, and perhaps *Vasumati* too are the instances of the royal matrimonial alliance while *Irāvatī* and *Śakuntalā* can be quoted as the examples of the love-marriage. *Mālavikā* is destined for Agnimitra but circumstances make it a love-marriage instead of the planned royal alliance.

According to the traditional classification, there are four types of the nāyikas – *Mahādevī, Devī, Nṛpavallabhā and Sthāyinī*. While Kālidāsa is dealing with the real ordinary women, he avoids establishing the highest ideals and therefore, none of the characters have directly been referred as *Mahādevī.* Kālidāsa has portrayed men falling at the feet of women i.e. *pranipāta* to seek forgiveness for his illicit affairs but never does a woman touches man's feet - neither as custom nor as a sinner to seek forgiveness.

The sense of dependence is acutely conveyed through the wives of trader Dhanamitra – *kācidāpannasattvā tasyā bhāryāsu syāt*. While the term *bhāryā* is self sufficient in expressing the helplessness and degraded status of women in patriarchal society the point is worth noticing that Kālidāsa has avoided addressing his women characters as *bhāryās.* It may be interpreted as Kālidāsa's faith in women's capability to hold on to herself and have an individual life in absence

of man. *Śakuntalā* raises her son without *Dusyanta*. *Urvaśī* also has domineering nature and individual identity while *Mālavikā* has been separated from her brother.

Even the maids have been shown to be independent. Kālidāsa emphasizes the age old belief that a women's life gets fulfilled with the birth of a son by presenting motherhood as the most respectable aspect of her life. *Śakuntalā* is welcomed back by *Dusyanta* for her son. *Urvaśī's* status also rises with the revelation of her son. While *Kalatra* usually refers to a woman or waist, Kālidāsa uses it for a married woman or a pregnant married woman. The term has the connotation of woman's being an asset to the man. When *Dusyanta* feels attraction towards veiled *Śakuntalā*, he checks himself reminding him of her being *parakalatra*. Being a neuter-ending term also suggests the same that an *āpannasattvā* woman is a property and liability of the husband.

Hence, Kālidāsa has used various terms, appellatives and invocations for women characters. Kālidāsa does not need to use his narratorial voice to introduce his women characters as his appellatives are self-sufficient in painting a clear picture right in front of our eyes of the women's weaknesses and strengths, status and plight and the irony of their lives. The events, the twists and turns in the storyline further help the initial but strong sketches grow resulting in the contemplation of a multi-dimensional personality.

These terms convey a great deal about the lives, moods and struggles of the women. While on one hand, they are *laxmīrupā - lalāmabhutā* and the *gṛhasvaminī* but on the other hand, she is reduced to the margins and becomes *abālā, parakiya* and *nyasa-swarupa*. A woman like *Śakuntalā* yearns for her own house throughout her life. *Duhitā* has duties to perform but does not belong to the house. She comes to her husband's house with expectations of making it her home but though she is *grhasvaminī*, she is nothing more than one of his many wives. She is exploited and is of use as a mother to his son. In the name of *sahadharmacarana*, she is dominated by man. She is rejected and deserted or simply allowed to reside in a corner of the house without any rights. She leads a life of struggles and compromises, the identity she seeks after losing her parental one is never granted to her. She does not possess the right to return to her parental house as they disown her leaving her in complete domination of man. She writhes with pain while he laughs but when he is in pain she, *the dayitā* and *pativratā*, soothes him. But will she ever get the respect and identity she deserves? Even Kālidāsa does not try to answer this question.

Kālidāsa has been successful enough to bring to the light the neglected story of a woman. He portrays the women characters realistically and faithfully. He suggests the solution to women's problems in the form of women's protest for equality and independence. He even hints about the rebellious tones of women in the contemporary bourgeois patriarchal society. He allows his women characters great psychological depth and variety thus imparting them their individual identity. He, unlike others, does not make his women characters inferior to men. His woman is a free woman – free to love, express and decide and step independently against the norms, to commit mistake and to bear the impact herself –gracefully and guiltlessly. She is not the sinner but has been committed the sin towards. Still she does not lose her sanity and even in that fallen stage commands grace and respect that the man lacks even in his prime.

Inspite of all his efforts and achievements, Kālidāsa fails to rise up as a reformer, a trend-setter in the direction of women emancipation. He though brings out the problems in the representations of women and suggests a way to redress that by portraying the rebellious attitude of the women, but the way he imparts a traditional happy-ending to his plays, he again and perhaps, deliberately sacrifices the opportunity to give the women their due

References

i. Raghu 1.1
ii. Beauvoir, Simone de, The Second Sex (1949), H.M. Parshley (Trans), Vintage Press, 1952, pp xvii
iii. Ibid: pp xvii
iv. Ibid: pp 3
v. Swami Tathagatananda, Abhijñānaśākuntalam - A Wonder Coming from a Land of Wonder, Vedanta Society of New York, 201, pp. 1
vi. https://static1.1.sqspcdn.com/static/f/632848/8449616/1283882405917/Abhijnana+Sakuntalam+A+Wonder+Coming+From+A+Land+Of+Wonders.pdf?token=BQVJYpOimn2DLqiDUbML%2Bdu%2FGzA%3D
vii. Abhi V.22

Sources

Goyal, Nisha (2021). Raghuvansham, vidyanidhi Prakashan
Kale, M.R. (1969). The Abhijñānaśākuntalam of Kālidāsa. Motilal Banarsidass.
Devadhar, C.R. (2018). Mālavikāgnimitram of Kālidāsa. Motilal Banarsidass.
Devadhar, C.R. (1966). Vikramorvaśiyam of Kālidāsa. Motilal Banarsidass.

* * *